जाति प्रश्न के बारे में

हमारे देश में जाति का सवाल अत्यन्त जटिल रहा है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में इस सवाल पर भी अलग-अलग अवस्थितियां हैं। विशेष तौर पर, हाल के दशकों में आये दलित उभार ने कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों को जाति और वर्ग के बीच के सम्बन्धों पर अपनी अवस्थिति को बदलने के लिए प्रेरित किया है। कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन जातिवाद के उन्मूलन के लिए उत्पीड़ित एवं दलित जाति संगठनों के गठन के कार्यभार लेकर कार्य कर रहे हैं। एक दो ऐसे भी संगठन हैं, जो प्रस्थापना पेश कर रहे हैं कि पहचान (identity) के आधार पर दलित संगठनों का निर्माण इंकलाब को समस्या को हल करने में महत्वपूर्ण हथियार के तौर पर काम करेगा। कई क्रांतिकारी संगठनों द्वारा यहां के पूंजीवादी विकास के परिणामस्वरूप हर जाति में होने वाले वर्गीय विभेदीकरण को नजरअंदाज किया जाता है या कम करके देखा जाता है। यह जाति सवाल पर उन्हें गलत अवस्थिति की ओर ले जाता है।

कुछ वामपंथी बुद्धिजीवी समूह एवं दलित बुद्धिजीवी हैं जो मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की मिश्रित विचारधारा तैयार कर रहे हैं। वे क्रांतिकारी विचारधारा निरूपण में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के दौरान सामाजिक सुधार के लिए कार्यरत नेताओं के विचारों यथा फुले, अम्बेडकर और पेरियार की क्रांतिकारी परिवर्तन में विशेष भूमिका देखते हैं। इनमें से कुछ भारतीय समाज व्यवस्था को ब्राह्मणवादी व्यवस्था चित्रित करते हैं और ब्राह्मणवाद को मुख्य दुश्मन के तौर पर चिह्नित करते हैं।

कुल मिलाकर जाति के प्रश्न पर कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन और वामपंथी बुद्धिजीवियों के भीतर अनेक तरह के भटकाव मौजूद हैं। ये भटकाव वर्ग और जाति के अंतर्सम्बन्धों को लेकर हैं, मूलाधार और अधिरचना में जाति की अवस्थिति को लेकर हैं और अम्बेडकर-पेरियार के विचारों के मूल्यांकन को लेकर हैं। दलित 'पहचान' के आधार पर दलित संगठन खड़ा करने के भटकाव मौजूद हैं। प्रस्तुत लेख में मौजूदा समय में जाति समस्या के प्रति कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों की गलत अवस्थितियों का खण्डन किया जायेगा। और इसी प्रक्रिया में अपनी समझ को प्रस्तुत किया जायेगा।

I

वर्ग और जाति

मार्क्सवाद 'वर्ग' के प्रवर्ग (category) को बहुत साफ-साफ परिभाषित करता है। इसके अनुसार वर्ग लोगों के ऐसे बड़े समूह हैं जो- सामाजिक उत्पादन के ऐतिहासिक तौर पर निर्मित व्यवस्था में ग्रहण करने वाले अपने स्थान द्वारा, उत्पादन के साधनों, यानि कि औजारों और उपकरणों

सार्थक संघर्ष

के साथ अपने सम्बन्ध द्वारा (अधिकांश मामलों में कानून द्वारा– निश्चित व सूत्रबद्ध), श्रम के सामाजिक संगठन में अपनी भूमिका द्वारा और परिणामस्वरूप सामाजिक सम्पदा के वे आयाम, जिसे वे खर्च करते हैं और उसे प्राप्त करने के तरीके द्वारा– एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

जाति की अवधारणा हमारे देश में एक ऐसे सामाजिक समूह की है जो जन्म से तय होती है। ऊंच–नीच के क्रम में होती है। पवित्रता–अपवित्रता इस क्रम की विशेषता है। शारीरिक श्रम करने वाली जातियां अपवित्र हैं। सबसे मेहनत का, सबसे खराब समझे जाने वाले काम करने वाले सबसे ज्यादा अपवित्र हैं। उनके साथ अस्पर्श्यता का व्यवहार होता है। उत्पादन में जजमानी प्रथा लागू होती है यानि कि 'संरक्षक' और 'आश्रित' के रिश्ते होते हैं। हर जाति के कार्य तय होते हैं। कोई जाति अपनी जाति के लिए निर्धारित कार्य करने के अलावा और कोई कार्य नहीं कर सकती । जाति के लोगों का अपनी ही जाति के भीतर विवाह होता है। इस ऊंच–नीच के सोपान क्रम में सबसे ऊपर ब्राह्मण होता है और सबसे नीचे अंत्यज। वैसे यह सोपान क्रम समूचे देश में एक समान नहीं रहा है। कुछ जातियां शूद्र से उठकर ऊपर भी आती रही हैं। मोटे तौर पर जाति आधारित यह सामाजिक व्यवस्था हजारों साल से चली आ रही थी। यह उत्पादन सम्बन्धों से जुड़ी थी।

परम्परागत जाति व्यवस्था में औपनिवेशिक शासन के दौरान ही दरारें पड़ गयी थीं। क्रमशः पूंजीवादी विकास ने जाति आधारित परम्परागत पेशों के अलावा नये–नये पेशों को जन्म दिया है। इन पेशों में सभी जातियों के लोग जा सकते हैं। जाति और वर्ग यहां जटिल रूप से सम्बद्ध हो जाते हैं। निम्न कही जाने वाली जाति का व्यक्ति समाज में शोषक वर्ग का सदस्य हो सकता है और उसके उल्टे भी हो सकता है। आगे लेख में इस पर चर्चा की गयी है।

इसी से जुड़ी बात यह है कि क्या जाति महज अधिरचना की परिघटना है या इसका उत्पादन प्रणाली से भी सम्बन्ध था? यदि अतीत में जाति मूलाधार का भी हिस्सा रही है और जाति ही किसी व्यक्ति की समाज में स्थिति को तय करने में निर्णायक रही है तो उसे वर्तमान में किस तरह परिभाषित किया जाये? यदि यह महज अधिरचना कि विचारधारात्मक परिघटना है तो इसका विरोध महज विचारधारात्मक स्तर पर ही होगा । यदि आज इसका कुछ भी सम्बन्ध उत्पादन सम्बन्धों से है और उत्पादन सम्बन्धों में अतीत के रूपों का अभी भी कुछ अस्तित्व है तो यह संघर्ष इस हद तक उत्पादन सम्बन्धों को बदलने का होगा। मुख्य बात यह है कि उत्पादन की मौजूदा प्रणाली में जाति को कहां स्थित किया जाय और फिर इस व्यवस्था को समाप्त करने के लिए क्या तरीके अपनाये जायें। आगे इन्हीं सवालों पर चर्चा की जायेगी।

निस्संदेह, भारतीय समाज जातियों में बंटा हुआ है। आज ये जातियां न सिर्फ हिन्दुओं में हैं बल्कि बदले हुये रूप में इस्लाम, ईसाई और अन्य धर्म मानने वालों में भी हैं। हिन्दुओं के अंदर जातियां सीढ़ीनुमा क्रम में हैं। इस सीढ़ी में ब्राह्मण सबसे ऊपर और दलित सबसे नीचे हैं। हजारों साल से चली आ रही इस जाति व्यवस्था की अपनी विशिष्टतायें रही हैं। इनमें प्रमुख थी प्रथमतः यह जन्मना पवित्रता–अपवित्रता की धारणा के अनुसार विभाजित रही है जिसमें ब्राह्मण सबसे पवित्र माना जाता रहा है और अंत्यज सबसे अपवित्र। अत्यंज के साथ किसी भी तरह से स्पर्श की मनाही रही है। इसकी दूसरी विशेषता रही है कि शारीरिक श्रम के सारे कार्य शूद्रों और अन्त्यजों के खाते में और बौद्धिक कार्य ब्राह्मणों के खाते में रहे हैं। इसकी तीसरी विशेषता यह रही है कि शूद्रों और अन्त्यजों के साथ ब्राह्मणों और अन्य सवर्ण जातियों के रिश्ते जजमानी प्रथा पर आधारित थे। सभी जातियों के विशिष्ट काम निश्चित थे। और कोई जाति अपने लिए निर्धारित काम के बदले या उसके

दलित मुक्ति-8

अलावा और कोई अन्य कार्य नहीं कर सकती थी। जातिगत सोपानक्रम में सबसे नीची सीढ़ी में मौजूद अंत्यजों के लिए किसी भी तरह की सामाजिक गतिशीलता के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी । लेकिन समूचे देश में जाति व्यवस्था का सोपानक्रम एक जैसा नहीं था। अतीत में किसी खास शूद्र जाति के सदस्यों के शासक बन जाने से उस जाति को सोपानक्रम में ऊंचा दर्जा हासिल हो जाता था। जाति व्यवस्था के अंदर सामाजिक गतिशीलता अलग-अलग जातियों के लिए अलग-अलग रही है। इसकी चौथी विशेषता एक जाति के लोगों द्वारा अपनी ही जाति के भीतर शादी करने और खानपान की व्यवस्था रही है। इसका किसी भी तरह से उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। इसके उल्लंघन, विशेष तौर पर जाति से बाहर शादी करने के उल्लंघन की परिणति, अक्सर जाति निकाले के तौर पर होती थी।

मोटे तौर पर अंग्रेजों के उपनिवेश बनने के पहले भारत की जाति प्रणाली पर आधारित समाज-व्यवस्था इसी श्रम विभाजन पर कार्यरत थी। यहां हम न तो जाति प्रथा की उत्पत्ति पर जा रहे हैं और न ही वर्ण से जाति में तब्दीली के कारणों की छानबीन कर रहे हैं। हमारे मौजूदा सवाल के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है। हमारे सामने जो जाति की संरचना आज मौजूद है, उसे समझने के लिए जाति व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं की चर्चा इसलिए आवश्यक है ताकि यह समझा जा सके कि जाति की कौन सी विशिष्टतायें आज मूलतः कायम हैं। और कौन सी ऐसी हैं जो रूप में तो कायम हैं, लेकिन उनकी अंतर्वस्तु बदल गयी है। इसके अतिरिक्त जाति की कौन सी ऐसी विशिष्टतायें हैं जो मूलतः समाप्त हो गयी हैं।

यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि जाति व्यवस्था पर आधारित श्रम-विभाजन की व्यवस्था का आधार स्थानीय पैमाने की प्राकृतिक अर्थव्यवस्था में था। इसी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत ही 'संरक्षक' और 'आश्रित' के रिश्ते चल सकते थे। ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्त कायम होने के बाद पूंजीवादी उत्पादन के आ जाने से पूंजी और श्रम के रिश्ते कायम होना शुरू हो गये। श्रम शक्ति खुद माल बनने लगी। इससे जाति व्यवस्था में दरारें पड़ने लगीं। पूंजीवादी उत्पादन के साथ ही बाजार का नेटवर्क जैसे-जैसे फैलता गया वैसे-वैसे जाति व्यवस्था पर आधारित श्रम विभाजन में परिर्वतन आता गया। 'संरक्षक' और 'आश्रित' के बीच के रिश्ते भी कमजोर पड़ते गये। आज समाज में जाति आधारित पेशे तो मौजूद हैं, लेकिन इनकी अंतर्वस्तु मूलतः नगद लेन-देन के रिश्तों में तब्दील हो चुकी है। नाई, बढ़ई, लोहार, कहार, कुम्हार, धोबी, तेली, भड़भूजा, कौरी (जुलाहा) कोइटी (कुशवाहा) आदि जातियों के जातिगत पेशे रूप में बने हुए हैं लेकिन इनकी अंतर्वस्तु बदल गयी है। चमड़े का काम करने वाला चमार और सफाई करने वाले भंगी का जातिगत पेशा बरकरार है, इस जातिगत पेशे को कोई अन्य जाति नहीं करती । इस अर्थ में जातिगत अलगाव भी बना हुआ है। ऐसे काम करने वाली जाति को नीची जाति समझने का दृष्टिकोण भी समाज में मौजूद है। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू भी है कि निम्न कही जाने वाली जातियों के पेशों में जहां दूसरी जातियों के लोग नहीं आते, वहीं दूसरी जातियों के पेशें में या नये-नये पेशों में इन जातियों के सदस्यों को अपनाने में कोई जातिगत बाधा नहीं है। जहां पहले दलित जातियों के बीच ऊपर की ओर सामाजिक गतिशीलता न के बराबर थी, वहीं आज इस गतिशीतला में तेजी आयी है। यह भी सही है कि यह गतिशीलता जितनी मध्यम जातियों में है, उतनी इनके बीच नहीं है।

जाति व्यवस्था का नंगा रूप हर गांव में दलित बस्तियों का गांव से बाहर आम तौर पर दक्षिण दिशा में स्थित होने में दिखाई पड़ता है। पवित्रता-अपवित्रता की अवधारणा का यह जीवंत

दलित सलाम-8

रूप ग्रामीण इलाकों में अभी तक बरकरार है। इसके पीछे सोच यही थी कि दक्षिण दिशा से हवा उत्तर की दिशा की और बहुत कम बहती है, इसलिए दलितों की बस्ती की तरफ से आने वाली 'अपवित्र' हवा से गांव की सवर्ण जातियां बची रहेंगी। जाति व्यवस्था का यह अपमानजनक व घृणास्पद पहलू अभी तक बरकरार है। इसी के साथ ही छुआछूत की भावना किसी न किसी रूप में मौजूद है जो जाति के सीढ़ीनुमा क्रम में सबसे नीचे वाले पायदान में खड़े व्याक्ति के लिए अपमान, कुंठा और आक्रोश का कारण है। ग्रामीण इलाकों के अलावा छोटे व मध्यम किस्म के कस्बों और शहरों में किसी दलित के लिए सवर्ण मकान मालिक से किराये का मकान मिलने में पेश होने वाली दिक्कतें इसी पवित्रता-अपवित्रता के जातिगत भेदभाव का ही लक्षण हैं। लेकिन यह भेदभाव निम्न पूंजीपति वर्ग के दलित और उससे भी ज्यादा गरीब दलित के साथ होता है। उच्च मध्यम वर्ग के दलित को इस तरह के सामाजिक भेदभाव को नहीं झेलना पड़ता। सार्वजनिक कुओं से पानी पीने, मंदिर में प्रवेश करने, सवर्ण हिन्दुओं के घर के भीतर प्रवेश करने पर पाबंदी तथा सवर्ण लोगों के दरवाजे से होकर जाने वाले रास्ते से बारात गुजरने को यदा-कदा बलात् रोकने की घटनायें जातिगत उत्पीड़न एवं भेदभाव के लक्षण हैं। इसी से जुड़ी हुई घटनायें दलित महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार में भी दिखाई पड़ती हैं। हालांकि ऐसी घटनायें दलित समुदाय द्वारा ग्रामीण सवर्ण अमीरों के विरूद्ध बढ़ते जाते संघर्ष के परिणामस्वरूप अब ज्यादा अंजाम दी जाती हैं। लेकिन इनकी परिणति उत्पीड़न के परिणामस्वरूप सामने आती है जिसका जातिगत आधार भी मौजूद है।

पुरानी जाति व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण घटक, जिसमें सब से कम तब्दीली हुई है, वह जाति के भीतर ही विवाह करने की प्रथा है। यह लगभग ज्यों-की-त्यों बरकरार है। यह उसी जाति को बार-बार पुनरूत्पादित करती रहती है। यह जाति की भिन्नता को ही नहीं बल्कि उसके सीढ़ीनुमाक्रम को भी बरकरार रखती है। अंतर्जातीय विवाह को जातिगत ढांचा मजबूरी में बर्दाश्त तो कर लेता है लेकिन इसको आमतौर पर पसंद नहीं करता। इसमें भी यदि जातिगत सीढ़ीक्रम में आस-पास की जातियां हैं और अनुलोम विवाह है, यानि कि अपेक्षाकृत उच्च जाति के लड़के का उससे निचली जाति की लड़की से विवाह है तो जातिगत ढांचा उसे बर्दाशत कर लेगा। लेकिन यदि प्रतिलोम विवाह है और जातियों के बीच सीढ़ीनुमा अंतर ज्यादा बड़ा है तो इसे जातिगत ढांचे में जीने वाला समाज बर्दाशत नहीं करता । ऐसे मसलों पर लड़के और लड़की, दोनों को रिश्तेदार ही मार डालने की हद तक चले जाते हैं। जाति व्यवस्था की मौजूदगी और निम्न कही जाने वाली जातियों के अलगाव व अपमान को सबसे अधिक नंगे रूप में ऐसे मामलों मे देखा जा सकता है। इसमें भी आर्थिक हैसियत का मामला निर्णायक हो जाता है। यदि निम्न कही जाने वाली जाति का कोई सम्पन्न लड़का किसी उच्च जाति की अपेक्षाकृत कम सम्पन्न लड़की से विवाह करता है तो लोग उसे स्वीकार न करते हुए भी झेल जाते हैं।

जातिगत आधार पर चलने वाली विशिष्टता जिसका लगभग अंत हो चुका है वह अपनी जाति के मसलों को हल करने वाली जातिगत पंचायतों की सर्वशक्तिमत्त से सम्बन्धित है। पहले जातिगत पंचायतें विवाह से लेकर तमाम लौकिक समस्याओं पर फैसला सुनाती थीं और उस जाति के सदस्य को इसे मानने की बाध्यता थी अन्यथा उसे जाति से निष्कासित किये जाने का खतरा होता था। चूंकि जाति से बाहर की उसकी दुनिया बहुत सीमित थी, इसलिए जातिगत समुदाय से बाहर उसे अपना अस्तित्व बनाये रखना काफी मुश्किल हो जाता था। उस समय उसका पेशा भी जातिगत होता था, इसलिए जाति की पंचायत के फैसले के विरूद्ध वह अपना पेशा भी नहीं कर सकता था।

सामाजिक गतिशीलता के अभाव में वह दूसरा पेशा भी नहीं अपना सकता था। आज जातिगत पंचायत का स्थान लौकिक समस्याओं को हल करने के लिए न्यायालयों और प्रशासनिक अधिकारियों ने ले लिया है। यदि कोई जातिगत पंचायत अपने किसी फैसले में अपनी जाति के किसी सदस्य को कोई भी काम करने से रोकती है तो वह सीधे कानून की शरण लेकर जातिगत पंचायत के अधिकार को चुनौती दे सकता है। इसके अतिरिक्त आवगमन के साधन और पूंजीवादी उत्पादन ने किसी भी जाति के सदस्य को अपने इलाके से दूर जाकर अन्य किस्म के काम करने की परिस्थितियों को पैदा किया है।

जाति व्यवस्था के रूप और अन्तर्वस्तु में उपरोक्त व ऐसे ही बदलाव हमारे देश में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के व्यापक होते जाने के कारण हुए हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्त ने पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की शुरूआत की और इसने जाति व्यवस्था को कमजोर कर दिया। इन उत्पादन सम्बन्धों के तहत जातिगत पेशे के अनुसार काम नहीं चल सकता था। अंग्रेज शासकों ने कल कारखाने, रेल, संचार और अन्य उद्योग जो स्थापित किये उससे जाति व्यवस्था टूटने की ओर गयी । अब फौजदारी कानून व सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों को जातिगत आधार पर लागू नहीं किया जा सकता था। कल-कारखानों में मजदूरों और कर्मचारियों की भर्ती जातिगत आधार पर नहीं हो सकती थी। यदि किसी विशेष कारखाने में या किसी कारखाने के विशेष विभाग में एक ही जाति के लोग भर्ती होते थे तो इसका कारण जातिगत पेशा नहीं था बल्कि मजदूरों को पालतू बनाने के लिए किसी खास सुपरवाइजर द्वारा अपने रिश्तेदारों व जाति के लोगों की भर्ती थी। यह तरीका आज भी पूंजीपति और प्रबन्धक इस्तेमाल करते हैं।

अब हम उन परिवर्तनों पर विचार करेंगे जो आजादी के बाद हुए हैं और जिनके परिणामस्वरूप हर जाति के भीतर वर्गों का निर्माण हुआ है। ऊपर कही जाने वाली और मध्यम जातियों में यह विभेदीकरण इतना तेज है कि स्पष्ट तौर पर नजर आता है। दलित जातियों के बीच विभेदीकरण की तस्वीर पेश करने के लिए हम आगे कुछ तथ्य पेश करेंगे।

लाल सलाम-8

II

जातियों के भीतर विभेदीकरण

देश में दलित और आदिवासी समूह में अधिकांश लोग सर्वाधिक गरीब हैं। उनके साथ सबसे अधिक भेदभाव होता है। वे सर्वाधिक उत्पीड़न के शिकार हैं। देश की मेहनतकश आबादी का यह हिस्सा सबसे खराब परिस्थितियों में काम करता है और सबसे गंदे समझे जाने वाले कार्य इसके ही खाते में आते हैं। लेकिन इसी दलित व आदिवासी समूह का एक हिस्सा सम्पन्न हुआ है और वह शासक जमात का हिस्सा हो गया है। इसके अलावा निरपेक्ष संख्या की दृष्टि से काफी बड़ी संख्या निम्न पूंजीपति वर्ग में शामिल हुई है। फिर भी समूची दलित व आदिवासी आबादी का यह छोटा हिस्सा है। इसी तरह, अन्य पिछड़ी जातियों में एक हिस्सा सम्पन्न हुआ है, इनके अंदर विभेदीकरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत ज्यादा तीव्र रही है। यानि कि इन सभी जातियों के भीतर अलग-अलग वर्ग

अस्तित्व में आये हैं। यह एक ऐसी हकीकत है जो सभी हकीकतों से ऊपर है और केन्द्र में है। लेख के इस हिस्से में हम इन बदलावों की चर्चा करेंगे।

सबसे पहले कृषि क्षेत्र को लें । 1991 की जनगणना के अनुसार कुल गैर अनु.जा./ज.जा. कृषक आबादी अपनी समूची जनसंख्या का 39.74 प्रतिशत थी, जब कृषि मजदूर 19.66 फीसदी थे, घरेलू उद्योग में 2.56 प्रतिशत तथा अन्य श्रमिकों की श्रेणी में 38.04 प्रतिशत थे। इसी प्रकार अनुसूचित जाति की कुल आबादी में कृषक आबादी 25.44 प्रतिशत, कृषि मजदूर 49.06 प्रतिशत, घरेलू उद्योगों में 2.41 प्रतिशत तथा अन्य श्रमिकों की श्रेणी में 23.08 प्रतिशत थे। ऐसे ही अ. जनजाति की कुल आबादी में कृषक आबादी 54.50 प्रतिशत, कृषि मजदूर 32.69 प्रतिशत, घरेलू उद्योगों में 1.04 प्रतिशत तथा अन्य श्रमिकों मेां 11.69 प्रतिशत थे।

इन तथ्यों से ग्रामीण आबादी में सभी जाति समूहों में वर्ग विभेदीकरण को देखा जा सकता है। यदि गैर दलित-आदिवासी जातियों के भीतर कृषकों का प्रतिशत ज्यादा है तो कृषि मजदूरों का भी प्रतिशत पर्याप्त है और यदि समूची आबादी में गैर दलित-आदिवासी की संख्या को देखा जाय तो यह कुल दलित-आदिवासी मजदूरों की संख्या से बड़ी संख्या हो जाती है। यह तथ्य यही दिखाता है कि खेत मजदूरों व अन्य मजदूरों में सभी जातियों के लोग शामिल हैं। हालांकि इन आंकड़ों में सीमान्त किसान से लेकर फार्मर तक को कृषक श्रेणी में रखा गया है, इससे अर्द्ध-सर्वहारा, छोटे किसान और फार्मर के बीच फर्क करना मुश्किल हो जाता है। फिर भी इस मोटे विभाजन से हमें अनु. जा., अनु.ज. जा0 और सामान्य जातियों के बीच वर्गीय विभेदीकरण की तस्वीर मिल जाती है। इन आंकड़ों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कृषि मजदूरों में भी गैर दलित, गैर आदिवासी जातियों से भारी मात्रा में लोग हैं।

ग्रामीण इलाकों के अलावा समूचे देश में जातियों के भीतर वर्गीय विभेदीकरण की प्रक्रिया काफी तेज रही है। आजादी के बाद से हमारे देश में सरकारी विभागों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का विकास हुआ है। बैंकों की शाखायें गांव-गांव तक फैल गयी हैं। बाजार की पहुंच से सुदूर इलाके भी नहीं बचे हैं। कृषि के पूंजीवादी विकास ने ग्रामीण इलाकों में ट्रैक्टर, पम्प सैट, थ्रेसर, उन्नत किस्म के बीज, खाद व कीटनाशक का एक बड़ा बाजार तैयार किया है। इन सबका परिणाम है कि बड़े पैमाने पर हर जातियों से लोग विभिन्न पेशों में और विभिन्न इलाकों में जा रहे हैं। विभेदीकरण को आगे बढ़ने में इन सबका प्रभाव पड़ा है। हर जाति में अलग-अलग वर्ग बने हैं।

इसे समझने के लिए हम केन्द्र सरकार में कार्यरत अनु.जा. और अनु.ज.जा. की विभिन्न श्रेणी में स्थिति को देखेंगे। (कृपया तालिका नं.-1 को देखें)

इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि अनु.जा. का रोजगार में हिस्सा 1965 से 1995 तक केन्द्र सरकार की सभी श्रेणियों में बढ़ा है लेकिन अनु. जा. की आबादी को तुलना में 1995 में भी श्रेणी-1 और श्रेणी-2 का प्रतिशत कम है। अनु.ज.जा. के मामले में तो यह उनकी आबादी के अनुपात में किसी भी श्रेणी में नहीं है। यह उनके साथ किसी न किसी रूप में चले आ रहे भेदभाव को प्रदर्शित करता है।

दलित सृजन-8

तालिका नं - 1

केन्द्र सरकार में अनुसूचित जाति/जनजाति के रोजगार स्थिति (1965 और 1955 में)										
श्रेणी	कुल कर्मचारियों की संख्या		अनुसूचित जाति		कुल का प्रतिशत		अनुसूचित ज.जा.		कुल का प्रतिशत	
	1965	1995	1965	1995	1965	1995	1965	1995	1965	1995
श्रेणी-I	19379	65408	318	6637	1.64	10.12	52	1891	0.27	2.89
श्रेणी-II	30621	108857	864	13797	2.82	12.67	103	2913	0.34	2.68
श्रेणी-III	1082287	2341863	96114	378172	8.88	16.15	12390	133179	1.14	5.69
श्रेणी-IV	1132517 सफाई क. सहित	1041082	101073 सफाई क सहित	221380	17.75 सफाई क.सहित	21.26	38444 सफाई क.सहित	67453	3.39 सफाई क.सहित	6.48
सफाई कर्मचारी	---	177527	.....	78719	.....	44.34	.....	12269	..	6.91
कुल जोड	2264795	3734737	298369	698705	13.17	18.71	50989	217705	2.25	5.83

(स्रोत : राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग की वार्षिक रिपोर्ट वर्ष 1996-97 और 1997-98, खण्ड 1)

प्रति श्रमार्थ-8

लेकिन तस्वीर का एक दूसरा पहलू है। क्या 1995 में भारत सरकार के श्रेणी-I, अनु.जा. 6637 और अनु.ज.जा. के 1891 अधिकारियों का और श्रेणी-II के 13797 अनु.जा. के और 2913 अनु.ज.जा. के अधिकारियों की भारत की विशाल दलित व आदिवासी मेहनतकश आबादी के साथ कोई वास्तविक हितों की एकता बनती है? ये शासक वर्ग के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ वर्ग है। इसके हित व्यापक मेहनतकश दलित व आदिवासी के विरूद्ध शासक वर्ग के साथ जुड़े हुए हैं।

इसी तरह दिनांक 1.1.95 को केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में ग्रुप । के अनु जा. के अधिकारियों की संख्या 16357 और अनु.ज.जा. के अधिकारियों की संख्या 4341 थीं। इन्हीं उद्यमों में ग्रुप B के अनु. जा. के अधिकारियों की संख्या 15397 और अनु.ज.जा. के अधिकारियों की संख्या 5331 थी। इन दोनों ग्रुपों में क्रमशः गुप । में अनु जा./ ज. जा. के अधिकारियों की संख्या 20698 और ग्रुप B में 20728 हो जाती है। यह निरपेक्ष संख्या 41426 है।यदि इसी संख्या में राष्ट्रीकृत बैंकों में काम करने वाले अनु. जा./ज जा. के अधिकारियों को संख्या को जोड़ दिया जाय तो दिनांक 1ण्1ण् 96 को अनु. जा. के अधिकारियों की संख्या 28102 और अनु. ज. जा. के

अधिकारियों की संख्या 9235 थी। यह संख्या मिलकर 78763 हो जाती है। यदि इसमें केन्द्र सरकार के श्रेणी-I के अनु.जा0 / ज.जा तथा श्रेणी -II के अनु.जा. /ज.जा. के अधिकारियों की संख्या जोड़ दी जाय तो निरपेक्ष संख्या की दृष्टि से यह तादाद लगभग एक लाख चार हजार होती है। इसी के साथ ही, विभिन्न राज्य सरकारों में श्रेणी-I और श्रेणी-II के इतने ही अधिकरी अनु.जा./ ज.जा. में होंगे। विभिन्न स्वतंत्र पेशे में भी अच्छी-खासी संख्या में सम्पन्न लोग होंगे। इस देश में दलित और आदिवासियों में 100 से ज्यादा सांसद और लगभग 400 से ज्यादा विभिन्न प्रदेशों में विधान सभा सदस्य होंगे। इनकी निश्चित संख्या मिल नहीं सकी है। ये तथ्य महज यह दर्शाने के लिए पेश किये जा रहे है जिससे दलित आबादी के उस हिस्से को चिन्हित किया जा सके जो पूंजीवादी व्यवस्था के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है।

इसके अतिरिक्त व्यापार, वाणिज्य और अन्य सेवाओं में दलितों की आबादी का एक हिस्सा गया है, जिसकी बानगी पेट्रोल पम्पों व गैस एजेन्सियों की इस तालिका से देखा जा सकता है।

तालिका - 2

क.सं .	उत्पाद	अ.जा.	अनु.ज.जा.	कुल जोड़
1	खुदरा बिक्री केन्द्रपेट्रोल/डीजल पम्प	774	266	15413
2	एस.के.ओ./एलडी.ओ	287	152	6053
3	एल.पी.जी	478	183	4292

(जोड़ का अर्थ अनु.जा. व अनु. जन. जा. व अन्य लोगों को आवंटित बिक्री केन्द्रों की कुल संख्या से है।)

(स्रोत : राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट 1993-94)

लाल सलाम-8

ये आंकड़े तो 1993.94 तक के हैं। इस दौरान इन दस वर्षो में तो और भी पेट्रोल पम्प तथा गैस ऐजेन्सियां खुली होंगी। कुल मिलाकर, दलित/आदिवासी समुदाय के बीच की दरिद्रता और अभाव के सागर में ये समृद्ध खुशहाल लोगों का एक टापू इन वर्षो में निर्मित हुआ है।आबादी का यह हिस्सा या तो शासक वर्ग में शामिल हो गया है या उनके साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है।

इसी प्रकार पंचायती व्यवस्था लागू होने के बाद जिला पंचायतों, ब्लाक पंचायतों एवं ग्राम पंचायतों में दलित आबादी के कुछ लोगों के पहुंचने से भी दलित लोगों के बीच ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज हुई है। यहां स्पष्ट तौर पर वर्गो में विभाजन दिखाई देता है। जो अन्धा होगा उसे यह नहीं दिखाई पड़ेगा। उसे 'दलित' की आम पहचान दिखाई पड़ेगी। न सिर्फ सरकारी नौकरियों में बल्कि ग्रामीण इलाके में जातियों के भीतर समरूपीकरण टूटा है। उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले की एक सर्वे रिपोर्ट के अनुसार,

''शिक्षा और राज्य नौकरशाही व सेवा क्षेत्र में रोजगार आर्थिक और राजनैतिक हैसियत में परिवर्तन का मुख्य उत्प्रेरक हो गया है। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि शिक्षा ने दलित नौजवानों के बीच जागरूकता बढ़ाने और स्थानीय मामलों में दावेदारी बढ़ाने में योगदान दिया है। यह हमारे नमूना गांवों में दलितों द्वारा निजी 'वैकल्पिक' बिना सहायता के और गैर मान्यताप्राप्त स्कूलों की स्थापना में तथा हाईस्कूल और कालेज शिक्षा के लिए बच्चों को मेरठ भेजने के प्रयासों में दिखाई पड़ता है। क्योंकि सरकारी स्कूलों में शिक्षा का स्तर खराब है। अम्बेडकर के नाम से इन प्राईवेट स्कूलों के गठन का उद्देश्य उनके विचारों का प्रसार करना और यह सुनिश्चित करना है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में 'मनुवादियों' से प्रतिस्पर्धा में दलित बच्चे समर्थ हो सकें। परिणामस्वरूप हमारे कुल उत्तरदाताओं में केवल 25 फीसदी ही निरक्षर थे और उनमें भी अधिकांश निम्न जातियों के थे और थोड़े ही लोग कालेज तक पहुंचे थे। सब मिला के हमारे नमूना गांवों में आजादी के पश्चात इन परिवर्तनों से जाटवों एवं अति पिछड़े वर्गो के एक हिस्से से एक ऐसी पीढ़ी अस्तित्व में आयी है जो शिक्षित है, ऊपर की ओर गतिशील है, समृद्ध है और जाति वर्ग सोपानक्रम में अपने से ऊपर लोगों के प्रति बहुत आक्रामक है। यही वह हिस्सा है जो मेरठ जिले की नयी पंचायतों में केन्द्रीय भूमिका अदा कर रहा है।''

(Social Capital, Panchayats and grass Roots Democracy, Politics of Dalit Assertion in Uttar Pradesh by Sudha Rai, EPW, 24 Feb, 2001, Page-648)

और यह हालत सिर्फ मेरठ जिले के कुछ गांवों तक ही सीमित नहीं है। तकरीबन समूचे देश में दलित जातियों और आदिवासियों की आबादी का एक छोटा हिस्सा बाकी विशाल दलित/आदिवासी आबादी की तुलना में आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हुआ है और उसकी राजनैतिक महत्वाकांक्षाएं बढ़ी हैं और जीवन के हर क्षेत्र में वह ऊपरी व मध्यम जातियों के वर्चस्व के विरूद्ध चुनौती देने की कोशिश कर रहा है। इसकी चुनौती ज्यादातर आर्थिक और राजनीतिक है। सामाजिक तौर पर इस भेदभाव और दुर्व्यवहार का शिकार उसे उस तरह नहीं होना पड़ता जिस प्रकार गरीब दलित को होना पड़ता है। जहां अधिकांश दलित आबादी को न सिर्फ सामाजिक भेदभाव अपमान और अस्पर्श्यता का शिकार होना पड़ता है बल्कि शोषण और उत्पीड़न का भी शिकार होना पड़ता है। इससे एक तरफ तो सामाजिक भेदभाव व उत्पीड़न के मामले में तो दलित समूह के तौर पर ये नकली एकता बनाते हैं वहीं आर्थिक शोषण के मामले में दलितों के छोटे से सम्पन्न तबके से व्यापक दलित आबादी की कोई एकता नहीं बनती। वहां इसके स्वार्थ ऊपरी व मध्य जातियों के सम्पन्न तबकों के साथ एक हो जाते हैं।

राज्य द्वारा जारी आरक्षण एवं अन्य सकारात्मक भेदभाव भरे कदमों से जहां इस विभेदीकरण की प्रक्रिया को तेज करने मे मदद मिली है, वहीं इसने सामाजिक तौर पर ऊपरी जातियों के सम्पन्न तबके के ग्रामीण इलाके में वर्चस्व को कमजोर करने में मदद की है। यह ऐसी प्रक्रिया रही है जिसने जमीनी तौर पर ग्रामीण व शहरी दलितों के बीच से विभिन्न नये पेशों और व्यवसायों में लोगों की लगाया है। आजादी के बाद के पूंजीवादी विकास ने औद्योगिकरण, शहरीकरण और शिक्षा के प्रसार को बल दिया है। इससे ग्रामीण इलाकों से विस्थापित होकर लोग शहरों में गये हैं वहां विभिन्न जातियों के लोग एक ही पेशे में काम करते हैं। इस प्रकार लोग वर्ग के बतौर एक साथ काम करते हैं। यह दोहरी पहचान उनके सामने होती है। काम करने के स्थान पर वे वर्ग के तौर

पर आचरण करते हैं और कार्यस्थल के इतर उनका जाति के रूप में आवरण तो रहता है लेकिन वर्ग की गहरी छाप होती है। इस दोहरे व्यवहार में जाति की पहचान का दायरा सीमित होता गया है। वर्ग की पहचान मूलभूत हो गयी है।

इसका मतलब यह नहीं है कि जाति आधारित भेदभाव और अलगाव खत्म हो गया है। यह शहरों और औद्योगिक क्षेत्रों तक में मौजूद है। लेकिन पहले की तरह इसकी नंगी अभिव्यक्तियों में कमी आयी है। ग्रामीण इलाके में जहां अधिकांश दलित व अत्याधिक पिछड़ी जातियों (MBC) के लोग खेत मजदूर व अन्य ग्रामीण मजदूरों के बतौर काम करते हैं वहां उच्च एवं मध्यम जातियों के कुलकों एवं भूस्वामियों के साथ इनके रिश्ते का चरित्र मालिक (employer) और मजदूर (employee) का हो गया है लेकिन इसमें परम्परागत जाति सम्बन्धों की भी छाप पड़ी है, उच्च व मध्यम जातियों के भू-स्वामी ही नहीं साधारण मध्यम किसान या छोटा किसान भी इनके साथ भेदभाव करता है। यहां जातिगत श्रेष्ठता के साथ-साथ मजदूरी के रिश्ते काम करते हैं। हाल के वर्षो में जहां संगठित तौर पर दलितों एवं अत्यधिक पिछड़ी जातियों के लोगों पर अत्याचार और हमले हुए हैं, वहां अधिकांश मामलों में प्रमुख कारण मजदूरी और इज्जत के सवाल रहे हैं। जब दलितों ने संगठित होकर काम मजदूरी पर काम करना बन्द कर दिया और ज्यादा मजदूरी की मांग की तो उच्च या मध्यम जाति के भू-स्वामियों ने जाति के आधार पर सवर्णो या मध्यम जाति के लोगों को गोलबंद करके हमले किये हैं। यहां जाति और वर्ग की तस्वीर ऊपर से देखने पर घुली-मिली लगती है । लेकिन यदि आभासी तौर पर दिखने वाले तथ्य की भेद कर सच्चाई तक पहुंचने की कोशिश की जाय तो इस जातिगत दिखने वाले संघर्षो की जड़ में वर्ग संघर्ष की सच्चाई दिखाई पड़ेगी। बिहार में रणवीर सेना का उदाहरण सामने है। अगर कोई इससे सीधे-सीधे यह निष्कर्ष निकाल ले कि रणवीर सेना एक जातिवादी सेना है जिसे बिहार राज्य की नौकरशाही और राजनेताओं के एक हिस्से का समर्थन प्राप्त है, तो वह जाति के आधार पर बने संगठन के आधार पर ही वह यह निष्कर्ष निकाल लेगा कि हमारे देश में जाति संघर्ष ही वर्ग संघर्ष है। यह निष्कर्ष अंधी गली में ले जायेगा। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हर जाति के भीतर वर्ग बने हैं। ऊपर और मध्यम जातियों में यह विभेदीकरण सबसे तीव्र है लेकिन दलित जातियों में भी विभेदीकरण हुआ है। ग्रामीण इलाकों में चूंकि मजदूरी करने वाले लोग अभी भी भारी मात्रा में दलित हैं इसलिए मजदूरों का संगठन व्यवहार में कहीं-कहीं दलित संगठन हो जाता है।यह दलित संगठन बनाने के भौतिक आधार को दर्शाता है। यह जहां एक हद तक उत्पादन सम्बन्धों के स्तर पर जातिगत सामाजिक संरचना को दिखाता है, वहीं इसके मूल में आये परिवर्तनों को यानि 'संरक्षक' और 'आश्रित' के रिश्तों की समाप्ति को भी दर्शाता है। भौतिक 'संरक्षक' और 'आश्रित' की भौतिक जमीन समाप्त हो गयी है लेकिन जातिगत आधार पर मालिक और मजदूरों के रिश्ते बने हुए हैं। यहां जाति व्यवस्था की सामाजिक संरचना के तहत प्राप्त भू-स्वामियों के अपने टूटते वर्चस्व के विरूद्ध विद्रोह सा दिखाई देता है, जब मजदूर संगठित और खड़े होते हैं।

अगर जाति व्यवस्था के आधार पर ही ग्रामीण सम्बन्ध टिके होते और समूची अर्थव्यवस्था के ऊपर उसी तरह का श्रम विभाजन होता तथा हरेक जाति का जाति आधारित पेशा होता तो बिहार में रणवीर सेना के इलाके से या अन्य किसी इलाके से मजदूरों का पलायन इतने बड़े पैमाने पर सम्भव नहीं हो पाता। इसके कारण यह होता कि उच्च जातियों के भू-स्वामी अपने खेतों में नाममात्र

की मजदूरी देकर या बेगार कराके अपने काम करने वालों को बलात रोक लेते । जहां पर सम्भव हो पाता है, वे ऐसा करते हैं। लेकिन यह अधिकाधिक कम होता गया है।

इसके कम होने में राज्य की भूमिका और देश में पूंजीवादी विकास के साथ-साथ इस देश के कम्युनिस्ट आंदोलन की भूमिका रही है। राज्य के सकारात्मक भेदभाव भरे कदमों मसलन नौकरियों में आरक्षण, शिक्षण संस्थानों के प्रवेश और अन्य सुविधाओं को देने, विभिन्न व्यावसायिक शिक्षण-संस्थाओं में आरक्षण, पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण के अलावा विभिन्न गरीबी-उन्मूलन योजनाओं तथा व्यवसाय व अन्य के लिए वित्तीय ऋण उपलब्ध कराने जैसे प्रयासों से दलित जातियों के बीच से एक अच्छा-खासा निम्न पूंजीपति वर्ग व उच्च वर्ग पैदा हुआ है। यह एक ऐसा विकासक्रम है जो अम्बेडकर के समय में बहुत कम विकसित हुआ था। इसके अतिरिक्त देश के अंदर होने वाले पूंजीवादी विकास ने ग्रामीण आबादी को देश के कोने-कोने में काम की तलाश में भेजा है। कम्युनिस्ट आंदोलन और मेहनतकशों के आंदोलनों ने उनके अंदर एक स्वाभिमान और शोषण व उत्पीड़न के विरूद्ध संगठित होकर लड़ने की भावना व कुवत पैदा की है। इन सबके संयुक्त प्रभावों के चलते ग्रामीण इलाके में भी जाति व्यवस्था का आधार कमजोर हुआ है। और वहां भी वर्ग की भूमिका अधिकाधिक निर्णायक होती गयी है।

फिर भी जाति आधारित भेदभाव, अलगाव और उत्पीड़न अगर जारी है तो इसका कारण महज जातिगत पिछड़ी चेतना या ब्राह्मणवादी सोच में ही नहीं बल्कि इसके मूल में वर्गों की टकराहट है। इस सोच से उच्च जातियों के भू-स्वामियों को मदद मिलती है तथा साथ ही इस व्यवस्था के कारण दलितों और आदिवासियों को सबसे कम मजदूरी पर काम करने को विवश किया जाता है। देश के अलग-अलग हिस्सों में सबसे कठिन मेहनत का काम करने वाले और सबसे सस्ते श्रमिकों में दलितों/आदिवासियों की ही संख्या सर्वाधिक है। इससे देश के पूंजीवाद को सस्ते दर पर श्रमिक मिलते हैं, इसलिए जाति व्यवस्था का खात्मा पूंजीपति वर्ग नहीं करना चाहता। यह उसके स्वार्थो की पूर्ति करता है।

पूंजीवादी संसद, विधानसभाओं तथा विभिन्न स्वायत्तशासी संस्थाओं और पंचायतों में आरक्षण की व्यवस्था ने और चुनाव की राजनीति ने तमाम बुर्जुआ पार्टियों को दलितों व सभी जातियों के बीच अपना वोट बैंक बढ़ाने व अपने-अपने आधार विस्तृत करने का कार्य किया है। इसने पूंजीवादी पार्टियों में दलितों व आदिवासियों के बीच आधार को लेकर प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है। पूंजीवादी राज्य द्वारा दलितों और आदिवासियों के एक हिस्से को अपनी व्यवस्था में आत्मसात करने के परिणाम के बतौर एक तरफ वर्ग विभेदीकरण तेज हुआ है और दूसरी तरफ जनवादीकरण हुआ है। इसलिए जो लोग यह सोचते हैं कि दलितों की मुक्ति बिना पूंजीवाद के समाप्त हुए हो सकती है वे या तो खुद मूर्ख हैं या वे दूसरों को मूर्ख बना रहे हैं।

संक्षेप में, उद्योग धंघों का विस्तार होने और कृषि के क्षेत्र में अर्द्ध-सामंती भूमि सम्बन्धों के खत्म होते जाने से जाति व्यवस्था का ढांचा जर्जर होकर रह गया है। भारतीय कृषि के क्रमिक पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप पुराने सामंतों का स्थान आधुनिक फार्मरों व कुलकों ने ले लिया है, जो कृषि को मुनाफा देने वाले उद्यम की तरह संचालित करते हैं। खेतिहर और ग्रामीण सर्वहारा की श्रमशक्ति माल बना चुकी है। आमतौर पर पुरानी जजमानी प्रथा के हिसाब से बंधुआ बना कर नहीं रखा जा सकता। ग्रामीण इलाकों में पूंजी की पैठ रंध्र-रंध्र में प्रवेश कर चुकी है। आज ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सामन्ती सम्बन्ध अवशेष के तौर पर ही मौजूद हैं, अधिरचना में उपस्थिति ज्यादा

दलित मुक्ति-8

ताकतवर है वह भी राज्येतर संरचना में ज्यादा है। राज्य के निकाय पूंजीवादी सम्बन्धों के आधार पर चलते हैं। राज्य के निकाय जाति व्यवस्था से मूलत: संचालित नहीं होते ।

III

अम्बेडकर व पेरियार के उद्‌भव का सामाजिक आधार

हजारों साल से चली आ रही जाति व्यवस्था से आबादी का एक बड़ा हिस्सा सामान्य मानवीय गरिमा से वंचित रहा है और हर तरह के भेदभाव, अपमान व उत्पीड़न का शिकार रहा है। शूद्रों और अन्त्यजों का यह हिस्सा मध्य युग में और समय-समय पर अपनी असहनीय दुर्दशा के विरूद्ध ऐसे धार्मिक आंदोलन में मुक्ति की तलाश कर रहा था जो सबको समान होने का ख्वाब दे रहे थे। मध्य युग में भक्ति आंदोलन वास्तविक सामाजिक आर्थिक जीवन से तो भेदभाव, उत्पीड़न व अन्याय को नहीं समाप्त कर सका लेकिन ईश्वर की उपासना के द्वारा उन्हें समानता देने का उपचार दे गया।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की सत्त कायम होने के बाद एक तरफ तो जाति व्यवस्था वाले समाज के ऊपर एक विदेशी सत्त कायम हो गयी, दूसरी तरफ जाति व्यवस्था के भीतर ही टूटन पैदा होने लगी। विभिन्न क्षेत्रों में पूंजीवादी उत्पादन शुरू होने से श्रमशक्ति माल बनने लगी। इसी के साथ ही फौजदारी व नागरिक कानूनों के बनने, शिक्षा-प्रसार और संचार के साधनों में बढ़ोत्तरी के साथ ही एक शिक्षित मध्य वर्ग अस्तित्व में आया। शिक्षित मध्यवर्ग का यह तबका पहले सवर्ण जातियों से आया। बाद के दिनों में शूद्रों व अछूत जातियों से भी यह आया। इस तबके को जहां एक तरफ ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की प्रशासनिक व अन्य जरूरतों को पूरा करने में लगाया गया, वहीं दूसरी तरफ उसके एक हिस्से में उपनिवेशवाद- विरोधी राष्ट्रीय चेतना और जनवाद की भावनाओं व विचारों ने भी जन्म लिया।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की सत्त स्थापित होने के बाद नये-नये वर्ग अस्तित्व में आये और यहां की सामाजिक जड़ता टूटी। हालांकि अंग्रेजों का लक्ष्य यहां की सामाजिक जड़ता को तोड़ना नहीं था। वे भारत को गुलाम बनाकर अधिकाधिक दोहन करने के लिए यह सारे उपक्रम कर रहे थे। लेकिन अंग्रेजों की इस लूट के परिणामस्वरूप, उनके न चाहने के बावजूद भारतीय समाज में उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन ने जन्म लिया। इसी के समानान्तर और इससे थोड़ा पहले से सामाजिक सुधार आंदोलन भी शुरू हो गये थे।

शुरू में ब्राह्मणों व उच्च जातियों के बीच फैली सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध सामाजिक सुधार के आंदोलन हुए। लेकिन बाद में गैर सवर्ण जातियों के सामाजिक आंदोलन हुए। उस समय ब्राह्मणवादी व्यवस्था से अधिकांश गैर सवर्ण जातियां त्रस्त थीं। उनके साथ सदियों से भेदभाव, उत्पीड़न और शोषण जारी था। इसलिए इस जातिगत भेदभाव, उत्पीड़न और शोषण के विरूद्ध उनका संघर्ष केन्द्रित था।

लाल सलाम-8

एक तरफ उपनिवेश-विरोधी राजनीतिक धारा थी, जो ब्रिटिश उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष को इसके भौतिक आधार सामंतवाद-विरोधी संघर्ष से और इसके अंग के बतौर जाति व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष से काट कर चला रही थी और दूसरी तरफ जाति व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करने वाले न तो उसकी जड़ सामन्तवाद के खात्मे के लिए संघर्ष कर रहे थे और न ही उपनिवेशवाद के विरूद्ध उनके कोई कदम थे।

सामाजिक समानता व जनतंत्र के लिए सबसे जुझारू जातिवाद विरोधी ज्योतिबा फुले भी ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्त के प्रति सदाशयता भरा रूख रखते थे। ज्योतिबा फुले अपने जीवन के अंतिम क्षण तक ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरोध में नहीं गये। हालांकि उन्नीसवीं सदी में जाति प्रथा के विरूद्ध उनकी कलम की धार को देखकर आश्चर्य होता है । इस मामले में वे समझौताहीन जनवादी के तौर पर दिखाई पड़ते हैं उनके जीवन में उनका पाला जाति व्यवस्था से पड़ा था। जाति व्यवस्था के कारण उनकी शिक्षा एक बार रोक दी गयी थी। बाजीराव पेशवा द्वितीय के शासन के दौरान ब्राह्मणों के वर्चस्व की यादें अभी ताजा थीं। वे अछूतों व महिलाओं के बीच में शिक्षा का प्रसार करने वाले पहले व्यक्ति थे। किसानों पर देशमुखों और उच्च जाति के लोगों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों और लूट का विरोध वे आजीवन करते रहे । वे जातिव्यवस्था के पाखण्ड और भेदभाव के विरूद्ध निरंतर अपनी आवाज बुलंद करते रहे । बाद में उन्होंने एक समतामूलक धर्म सत्यशोधक-धर्म की स्थापना की । उनकी मृत्यु के बाद उनके द्वारा निर्मित सत्यशोधक समाज मुख्यत: सांमत शाहूजी महाराज द्वारा अपने लिए क्षत्रिय की मान्यता प्राप्त करने और सामंती व्यवस्था को कायम रखने की कड़ी बन कर रह गया। इस जनवादी धारा का अंत सत्यशोधक धर्म के पिछड़े जातियों के समृद्ध लोगों के हितों के हथियार के तौर पर हुआ । इसकी एक छोटी सी धारा किसानों और मजदूरों को कुछ दिनों तक संगठित करने में लगी रही।

ज्योतिबा फुले के बाद विशेष तौर पर बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में गैर ब्राह्मण जातियों के जातिवाद विरोधी आंदोलन खड़े होने शुरू हुए। इनमें सबसे प्रभावशाली महाराष्ट्र में बी. आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन और तमिलनाडु में रामास्वामी नायकर पेरियार के नेतृत्व में ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन थे।

अम्बेडकर ज्योतिबा फुले से प्रभावित थे। वे महार जाति के उच्च शिक्षा प्राप्त प्रथम व्यक्ति थे। अमरीका से पढ़ाई कर लौटने के बाद वे कुछ दिनों के लिए बड़ौदा रियासत में नौकरी पर थे। इसके बाद जातीय भेदभाव व अपमान की वजह से वे बड़ौदा की नौकरी छोड़कर बम्बई चले आये। उस समय तक ज्योतिबा फुले का आंदोलन मुख्यतौर पर कोल्हापुर के सामंत शाहूजी महाराज के इर्द-गिर्द केन्द्रित हो गया था। अम्बेडकर के पहले महार जाति के कुछ शिक्षित व सम्पन्न लोगों ने सामाजिक सुधार के लिए संगठन बना रखा था लेकिन उनका लक्ष्य महार जाति के लोगों को शुद्ध करके हिन्दू समाज के हिस्से के तौर पर उन्हें विकसित करना था।

अम्बेडकर ब्रिटिश उपनिवेशवाद की सर्वशक्तिमत्त को देख रहे थे। उनके समाने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समझौतावादी नेतृत्व था, जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का विरोध कुछ रियायतों को हासिल करने के लिए करता था। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में उच्च जातियों के वर्चस्व को भी देख रहे थे। उनकी अपनी शिक्षा-दीक्षा ने उन्हें कभी भी ''स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे'' के पूंजीवादी नारे से आगे नहीं जाने दिया। वे समाज में जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न के प्रति कांग्रेस नेतृत्व में कोई सरोकार नहीं देख रहे थे। वे जिस काल में भारतीय राजनीति में प्रवेश कर

लाल पताका-8

रहे थे वह काल मजदूरों में एक नये उभार का भी घोतक था। 1920 में उदारापंथी कांग्रेस नेताओं के नेतृत्व में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जन्म हो गया था। ऐसे समय में अम्बेडकर ने अपने राजनीतिक व सामाजिक दृष्टिकोण का विकास किया।

अम्बेडकर ने जहां एक तरफ उन महार नेताओं के विरूद्ध संघर्ष किया जो महार व दलित जातियों को शुद्ध करने और उसे हिन्दू समाज का हिस्सा बनाने के लिए काम कर रहे थे। उन्होंने दलितों के स्वतंत्र संगठन और स्वतंत्र राजनीति करने के नजरिये को स्थापित किया। दूसरी तरफ, इसको अंजाम देने के लिए उन्होंने दलितों में उभरने वाले पढ़े-लिखे तबके के लिए नौकरी में आरक्षण और उनके लिए स्वायत्तशासी संस्थाओं एवं विधान परिषदों में आरक्षण की मांग की। इसके अतिरिक्त क्योंकि उनका सामाजिक आधार दलित तबके और विशेष तौर पर महार जाति तक ही सीमित था, और उनका बहुलांश ग्रामीण क्षेत्र में या तो छोटा खेतिहर या भूमिहीन किसान था या शहरों में कल कारखानों में काम करने वाला मजदूर था। इस सामाजिक आधार को बनाये रखने और इसको विस्तृत करने के लिए वे मजदूरों और किसानों की मांग उठाने के लिए विवश थे। लेकिन उनकी इन मांगों का भी आधार ब्राह्मणवाद के विरूद्ध अंत्यजों और शूद्रों की एकता थी।

अम्बेडकर का समूचा दृष्टकोण ऐसे समय की उपज था, जिसकी विशेषता जाति व्यवस्था से ग्रस्त भारतीय समाज था। उनके इस दृष्टिकोण के निर्धारण में उपनिवेशवादियों के आने के बाद दलितों की स्थिति में सुधार की सम्भावनायें पैदा होने की परिस्थितियां थीं। क्योंकि ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्त स्थापित होने के बाद ही सार्वजनिक शिक्षा जैसी स्थिति की सम्भावना बनी थी। इसलिए वे जितना मुखर होकर ब्राह्मणवाद व गांधी की आलोचना करते, ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्त की आलोचना नहीं करते । मुखर होकर आलोचना करना तो दूर वे ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्त से अपनी मांगे रखते समय यह कहना नहीं भूलते कि उनके जाने के बाद अनेक लोगों को भय है कि कहीं फिर से ब्राह्मणवादी सत्त न स्थापित हो जाय। जिससे इस देश के दलित हजारों साल से पीड़ित रहे हैं। वे गोलमेज सम्मेलन में अपनी बात इस तरह से कहते हैं,

> ''दलित वर्ग और ब्रिटिश एक असाधारण बंधन में बंधे हुए हैं। दलित वर्गों ने अंग्रेजों का रूढ़िवादी हिन्दुओं के सदियों पुराने जुल्मों और अत्याचारों से मुक्ति दिलवाने वाले लोगों के रूप में स्वागत किया था । उन्होंने हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों के विरूद्ध युद्धों में लड़कर अंग्रेजों को भारत का यह विशाल साम्राज्य जीत कर दिया था, जिसके लिए उन्होंने दलित वगों के संरक्षक की भूमिका ग्रहण की थी।...
>
> (बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर संपूर्ण वाड़मय खण्ड-5, प्रकाशन संस्थान भारत सरकार ,नयी दिल्ली पृष्ठ-16)

अम्बेडकर के समूचे राजनीतिक जीवन पर एक विहंगम दृष्टि डाले तो एक धागा सामान्यतौर पर जुड़ा हुआ है कि अंबेडकर दलितों की दावेदारी के बल पर स्थापित व्यवस्था में शामिल होने के लिए हमेशा लालायित हैं। चाहे 1926 में बम्बई विधान परिषद में मनोनीत सदस्य के रूप में हों, चाहे साइमन कमीशन और गोलमेज सम्मेलन में प्रतिनिधित्व का प्रश्न हो या चाहे आजादी की पूर्वबेला में श्रम मंत्री और संविधान सभा में जाने और आजादी के बाद पहली सरकार में कानून मंत्री बनने का प्रश्न हो। अम्बेडकर इसके लिए हर तरह के जोड़-तोड़ करते हैं। उनकी बाकी राजनीतिक

दलित साहित्य-8

गतिविधियां स्थापित व्यवस्था में शामिल होने के लिए जनाधार विस्तृत करने के उपाय हैं। वे कांग्रेस की उच्च जातियों और बनियों की पार्टी कहकर एक समय में भर्त्सना करते हैं तो दूसरे समय में उसी पार्टी की सरकार में केन्द्रीय मंत्री भी बनते हैं। वे एक समय में मजदूरों की हड़ताल में शामिल होने से अनुसूचित जाति के सदस्यों को रोकते हैं तो दूसरे समय में वे उनसे हड़ताल में शामिल होने का आह्वान भी करते हैं। वे एक समय में यह घोषणा करते हैं कि दलितों के साथ शूद्र (आज की पिछड़ी जातियों) का मोर्चा बनना चाहिए और दूसरे समय में इसके न बनने पर दुखः व्यक्त करते हुए निराशा में कहते हैं।

> ''यह स्पष्ट है कि ये तीन वर्ग (अछूत, शूद्र और आदिवासी) स्वाभाविक संश्रयकारी हैं। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विनाश के लिए इनके मिलने का प्रत्येक आधार है लेकिन वे नहीं मिले ..... इसका परिणाम यह है कि इस संघर्ष में अछूतों का साथ देने के लिए कोई नहीं हैं। वे पूर्णतया अलग-थलग हैं । न सिर्फ वह अलग-थलग हैं, बल्कि उसका विरोध उन्हीं वर्गो द्वारा किया जाता है जिनको कि उसका स्वाभाविक संश्रयकारी होना चाहिये।''
>
> (The untouchables - Childern of Indias Ghetto, B.R. Ambedkar, Writing and Speeches, Vol. 5)

वे जिस बात पर निराशा व्यक्त कर रहे हैं, वह उनकी परियोजना की, उनकी रणनीति की स्वाभाविक परिणति थी। ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष में बगैर कोई हिस्सेदारी किये हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष की यही तार्किक परिणति थी। वस्तुतः हिन्दू सामाजिक व्यवस्था भारतीय राजनीतिक-आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को निर्धारित करने वाली शक्ति नहीं रह गयी थी। इस बात को अम्बेडकर जानते-समझते थे। लेकिन दलित दावेदारी के बल पर शासक जमात में आत्मसात होने का उनका दृष्टिकोण व्यापक मेहनतकश लोगों की एकता का नारा देने से उन्हें रोकता था। उनका ब्राह्मणवाद विरोध वस्तुतः मेहनतकश लोगों की एकता को तोड़ता था और दलित जातियों को अन्य जातियों के बरक्स खड़ा करता था। जाति प्रथा उन्मूलन का अम्बेडकर का अभियान वस्तुतः दलित जातियों के एक छोटे से हिस्से का सत्त में आत्मसात होने का अभियान बन कर रह गया था। अम्बेडकर की समय-समय पर जिन राजनीतिक संगठनों को खड़ा करने की कोशिशें थीं वह चाहे औपनिवेशिक सत्त रही हो या चाहे 1947 के बाद की सत्त, वे दलित जातियों में से उभर रहे, मध्यम वर्ग के स्थापित व्यवस्था में आत्मसात करने की रणनीति को पूरा करने के दांवपेंच थे। जो राष्ट्रीय आंदोलन के चढ़ाव-उतार और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की तत्कालीन स्थितियों से निर्धारित होते थे। वे तीन बार राजनीतिक पार्टियां बनाते हैं। पहली बार 1936 में 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी' (प्दकमचमदकमदज स्ंइवनत च्ंतजल), फिर इसे भंग करके 'अनुसूचित जाति संघ' (Scheduled Caste Federation) बनाते हैं और फिर अपने जीवन के अंतिम दिनों में रिपब्लिकन पार्टी बनाने की घोषणा करते हैं जो इनके मरणोपरान्त अस्तित्व में आयी।

1936 में स्वतंत्र मजदूर पार्टी ऐसे समय में अस्तित्व में आयी जब समूचे देश में मजदूर, किसान और अन्य मेहनतकश तबकों के आंदोलन उभार पर थे। स्वतंत्र मजदूर पार्टी ने मजदूरों और किसानों के आंदोलनों में शिरकत की । इस समय अम्बेडकर अपने को मेहनतकश लोगों के संघर्ष के मामले में कम्युनिस्ट दर्शन के सबसे नजदीक बताते हैं। जो अंबेडकर एक समय में कम्युनिस्टों को ब्राह्मण छोकरे कहकर खिल्ली उड़ते थे, वही उनके साथ खड़े होते हैं लेकिन जैसे ही दूसरे विश्व

युद्ध के दौरान यह परिस्थिति दिखाई पड़ने लगती है कि अंग्रेज यहां की हुकूमत छोड़कर जा सकते हैं और 'वैवेल प्लान' सामने आता है, वैसे ही वे स्वतंत्र मजदूर पार्टी की केंचुल उतार कर फेंक देते हैं और अनुसूचित जाति संघ का गठन करके 'राज्य और अल्पसंख्यक' (State and Minortities) नामक प्रस्ताव पारित करते हैं जिसे संविधान सभा के समक्ष पेश किया जाता है। वे 1940 में कांग्रेसी सरकारों के गिरने पर जिन्ना के साथ खुशी मानते हैं इसके बाद जब कांग्रेस पार्टी में मंत्री रहते हुए इनकी उपेक्षा होती है तब यह तीसरी बार एक नयी राजनीतिक पार्टी की घोषणा और अपना धर्मान्तरण करते हैं।

जाति उन्मूलन के घोषित उद्देश्य को लेकर चलने वाले अम्बेडकर के राजनीतिक जीवन का अंतिम पड़ाव जाति व्यवस्था से ग्रस्त हिन्दू समाज से पलायन में है। इस पलायन ने तो यह सिद्ध कर ही दिया कि अम्बेडकर का उद्देश्य जात-पात उन्मूलन भी नहीं था।उनका सामाजिक परिवेश उन्हें जाति उन्मूलन के नारे की ओर ले जाता है और उनका दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य तत्कालीन शासकों के साथ उन्हें खड़ा करता है। दरअसल अम्बेडकर ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के समय उनकी सत्त के साथ सांठ-गांठ किये रहे। जब पूंजीपतियों की सत्त आयी तो उन्होंने उसके साथ सांठ-गांठ कर ली। इसीलिए गांधी और कांग्रेस के कटु आलोचक होने के बावजूद वे उसी कांग्रेस के नेतृत्व में बनने वाले मंत्रिमंडल के सदस्य तो होते ही हैं इसके साथ ही भारतीय शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग के संविधान सभा की ड्राफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन भी होते हैं। यह संविधान जो निजी सम्पति को उस समय मौलिक अधिकार का दर्जा दिए हुए था। इस प्रकार अम्बेडकर पूंजीपित वर्ग विशेष तौर पर दलित पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक प्रतिनिधि थे जो सत्त में हिस्सेदारी के लिए अपनी कोशिश कर रहा था। वे दलित निम्न-पूंजीपति वर्ग की क्रांतिकारी सोच के राजनीतिक प्रतिनिधि तो कतई नहीं थे। इसलिए अम्बेडकर उसी 'पूंजीवादी-ब्राह्मणवादी' पार्टी कांग्रेस के मंत्रिमंडल में शामिल हो गये। उन्होंने कभी भी जाति विरोधी आंदोलन को उसकी तार्किक परिणति सामंतवाद विरोधी आंदोलन और उसके संरक्षक औपनिवेशिक सत्त के खिलाफ, के साथ जोड़ने की कोशिश करना तो दूर उसके बारे में सोचा भी नहीं। कारण स्पष्ट था।तब इनको बम्बई विधान परिषद के मनोनित सदस्य, गोलमेज सम्मेलन, संविधान सभा व मंत्रीपद की जगह पर जेल व कालकोठरी की तैयारी करनी पड़ती। यह मामला सिर्फ हिंसा व अहिंसा का नहीं था। बुनियादी मसला वर्गीय पक्षधरता का था। यदि मेहनतकशों की तरफ से ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विरूद्ध राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में कोई हिस्सेदार होता तो उसको गोलमेज सम्मेलन या संविधान सभा में अंग्रेजी हुकूमत स्थान देने को तैयार नहीं हो सकती थी। यह अकारण नहीं है कि जब अम्बेडकर गांधी और अन्य, लंदन में गोलमेज सम्मेलन में डोमिनियन स्टेट्स और भावी शासन-विधान पर चर्चा कर रहे थे उस समय भारत के मजदूर वर्ग और मेहनतकश लोगों के सच्चे प्रतिनिधियों पर मेरठ षड़यंत्र केस चल रहा था और उनको काला-पानी की सजा देने की तैयारियां ब्रिटिश साम्राज्यवाद कर रहा था।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी जानते थे कि कौन उनका वर्ग सहयोगी है या बन सकता है और कौन उनका दुश्मन है। इसी लिए उनका अलग-अलग पार्टियों, समूहों और व्यक्तियों से निपटने का तरीका अलग-अलग था। ब्रिटिश साम्राज्यवादी और बाद के दिनों में कांग्रेस, दोनों जानते थे कि अम्बेडकर के नेतृत्व में चलने वाले दलित आंदोलन को आत्मसात किया जा सकता है। इससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद और 1947 के बाद भारतीय शासक वर्ग की सत्त के सामाजिक आधार का विस्तार होगा, इस तथ्य से वे भलीभांति परिचित थे । और वही हुआ भी।

लाल पताका-8

अम्बेडकर की जाति उन्मूलन सम्बन्धी अवधारणा के पीछे उनका इतिहास के प्रति गलत दृष्टिकोण भी जिम्मेदार रहा है। वे इतिहास की भाववादी व्याख्या पेश करते हैं। उनके हिसाब से बुद्ध धर्म को पराजित करके ब्राह्मणवाद अस्तित्व में आया था। इसे वह जातिप्रथा की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। यानि वे इसे मुख्यत: दो धर्मों, जो एक दूसरे के विपरीत हैं, के बीच का संघर्ष मानते हैं। उनके अनुसार इसका उत्पादन प्रणाली से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका यह अनैतिहासिक नजरिया तत्कालीन समाज के उनके मूल्यांकन में भी दिखाई पड़ता है। वे तत्कालीन समाज में मुख्य दुश्मन ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद को बताते हें। बीसवीं सदी के 20 के दशक में अगर किसी को ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्त मुख्य दुश्मन के तौर पर नहीं दिखाई देती तो उसे क्या कहा जा सकता है? ब्राह्मणवाद एक विचारधारा है और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने पुराने सामंती सम्बन्धों के स्थान पर जो नये सामंती सम्बन्ध खड़े किये थे, उसने जाति आधारित सामाजिक संरचना को कमजोर किया था, जिसके आधार पर कई शूद्र जातियों के लोग जमींदार व धनी किसान के तौर पर उभर कर आये थे। लेकिन अंबेडकर की आंख में इतिहास देखने का एक चश्मा लगा था जिससे देखने में हर चीज जातिमय हो जाती थी। वे धर्म से बाहर उसका समाधान देख ही नहीं पाते थे। इसलिए वे धर्म में ही दलित मुक्ति का आधार देखने लगे । वे तार्किक थे और हर बात को तर्क की कसौटी पर कसते थे। लेकिन उनका देखने का नजरिया अनैतिहासिक था।

अंबेडकर के ही समकालीन मद्रास प्रांत में पेरियर ने ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन की नींव डाली। वे जब युवक ही थे तभी वे जातपात के भेदभाव भरे सामाजिक रीति-रिवाजों के खिलाफ खड़े हो गये। बाद में वे कांग्रेस में शामिल हुए और कांग्रेस के उच्च जाति की मानसिकता से ग्रस्त होने तथा सामाजिक कुप्रथाओं के खिलाफ न जाने के विरूद्ध समाज सुधार का झंडा बुलन्द किया और 1926 में 'आत्मसम्मान लीग' (Self respect Leage) की स्थापना की, जिसका तमिलनाडु स्तर पर सम्मेलन 1929 में हुआ। उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितगिरी का विरोध किया। जाति उन्मूलन का नारा दिया और महिलाओं की मुक्ति की बात की। वे अनीश्वरवाद के पक्षघर थे। 1932 में उन्होंने सोवियत संघ की यात्रा की और कुछ समय के लिए सिंगारबेलू के साथ कम्युनिज्म का प्रसार किया। लेकिन यह थोड़े दिनों तक चला। 1934 के चुनाव में वे राष्ट्रा।विरोधी जस्टिस पार्टी के समर्थन में चले गये। बाद में उन्होंने 'द्रविड् कषगम' (डी.के) की स्थापना की । उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के विरूद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवाद का साथ दिया। 15 अगस्त 1947 को उन्होंने 'शोंक दिवस' का नाम दिया और 'ब्राह्मण राज' से मुक्ति की आवाज उठायी। बाद में सम्पन्न 'नाडार' जाति के मुख्यमंत्री कामराज का समर्थन किया। जब डी.एम.के. पार्टी सत्त में आयी तो उन्होंने उसका समर्थन किया। वे अन्त तक उत्तर-विरोधी, हिन्दी-विरोधी और ब्राह्मण-विरोधी बने रहे। 1957 में उन्होंने भारतीय संविधान को जलाया।

पेरियार जीवन के अंतिम क्षण तक घोर ब्राह्मणवाद-विरोधी, जात-पात विरोधी और अनीश्वरवादी बने रहे। लेकिन भारतीय समाज के बुनियादी अंतरविरोधों से पैदा होने वाले संघर्षों से कटे इस व्यक्तित्व ने कभी घोर प्रतिक्रियावादी जस्टिस पार्टी का साथ दिया तो कभी कामराज कांग्रेस का तो कभी डी.एम.के. पार्टी का जो कि खुद वहां के शासक वर्गों क्षेत्रीय पूंजीपतियों और धनी-किसानों की पार्टी थी।

यह बात भी अजीब है कि अम्बेडकर जाति विरोध से शुरू करके भारतीय शासक वर्ग के संविधान निर्माताओं में एक बने और पेरियार अपने जाति विरोध से शुरू करके राष्ट्र विरोधी जस्टिस

पार्टी और बाद में क्षेत्रीय शासक वर्गों की पार्टी के समर्थक बने। एक ने बुद्ध धर्म अपनाने में मुक्ति देखी तो दूसरे ने अनीश्वरवाद में। चूंकि ये दोनों भारतीय समाज के बुनियादी अंतरविरोध से उत्पन्न सामाजिक संघर्षों से कटे हुए थे। इन दोनों का दृष्टिकोण अनैतिहासिक था इसलिए ये अंततोगत्वा शाासक वर्ग की सेवा में ही गये। न तो एक धर्म से पलायन करके दूसरे धर्म में दलित मुक्ति मिली और न ही अनीश्वरवाद व ब्राह्मणवाद विराधी कोरे प्रचार से समाज में जातिगत असमानता व उत्पीड़न का अंत हुआ।

पेरियार गैर ब्राह्मण जातियों के सम्पन्न वर्गों की आकांक्षाओं की पूर्ति में कारगर सिद्ध हुए। चूंकि उस समय के तमिल इलाकों में सामाजिक तौर पर ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम था और आर्थिक तौर पर गैर ब्राह्मण जातियों में भी समृद्धि आ रही थी। पेरियार का बिना आर्थिक शोषण को खत्म किये सामाजिक समानता का दृष्टिकोण वस्तुतः गैर ब्राह्मण सम्पन्न तबकों की सेवा करता था। इस तरह पेरियार द्वारा हिन्दू शास्त्रों की होली जलाने व अनीश्वरवाद का प्रचार-प्रसार करने से न तो उपनिवेशवाद का वस्तुतः विरोध होता था और न ही सामंतवाद का खात्मा होता था । पेरियार की तार्किता व अनीश्वरवाद उन्हें शोषक शासक वर्गों के प्रतिनिधि बनने से नहीं रोक सकती थी। यह समूचा मसला वर्ग दृष्टि का था जो निजी सम्पत्ति की व्यवस्था को स्वीकार करने से सीमित हो गयी थी। सोवियत संघ की यात्रा और कुछ दिन कम्युनिज्म का प्रचार करने के बावजूद न तो वे समाज के सबसे क्रांतिकारी वर्ग सर्वहारा वर्ग की नेतृत्वकारी क्षमता को आत्मसात कर सके और न ही समाज के बुनियादी अंतरविरोधों को समझ सके । फलस्वरूप अपने गैर सर्वहारा वर्ग दृष्टिकोण के कारण वे तमिलनाडु के गैर ब्राह्मण शासक वर्ग के वैचारिक प्रतिनिधि व राजनीतिक प्रवक्ता बन गये।

लाल सलाम-8

IV

कम्युनिस्ट आंदोलन में जाति का सवाल

भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन को शुरू से ही जाति के सवाल से रू-ब-रू होना पड़ा था। कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने शुरूआती काल से ही राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सामाजिक आधार, भारतीय सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा मान कर अपने संघर्ष की दिशा निर्धारित की। यह स्वाभाविक था कि सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष करते समय विशेष तौर पर जाति के सवाल से टकराना पड़ता ।यह उस समय कम्युनिस्ट पार्टी के सामने एक गम्भीर समस्या के तौर पर रही है कि एक तरफ तो मजदूर वर्ग अलग-अलग जातियों से औद्योगिक इकाइयों में एक साथ कार्यरत्थे वहीं दूसरी तरफ वे अगल-अलग जातियों के आधार पर अपने रहने के स्थानों पर केन्द्रित होते थे । यह वह समय था जब मजदूर वर्ग की पहली पीढ़ी या कहीं-कहीं दूसरी पीढ़ी औद्योगिक क्षेत्रों में आ रही थी। और उनका अपने गांवों और जाति से घनिष्ठ रिश्ते थे। एक तरफ तो कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्त मजदूरों की एकता को पैदा करने के लिए उन्हें गोलबंद और संगठित कर रहे थे और दूसरी तरफ जातिगत भेदभावों को दूर करने के लिए उनको शिक्षित कर रहे थे। जातिगत भेदभावों के विरूद्ध चेतना बिना वर्ग संघर्ष में उनको खड़ा किये स्वंतत्र रूप से नहीं

विकसित हो सकती थी। और कम्युनिस्ट पार्टी तथा ट्रेड-यूनियनों ने यहीं से शुरूआत की। ग्रामीण इलाकों में भूमिहीन एवं गरीब किसानों को संगठित करते हुए उन्होंने मालिक किसानों को संगठित करने में भूमिका निभायी और यहां विभिन्न जातियों के जिसमें सवर्ण व मध्य जातियां भी सम्मिलित हैं, को जमींदार विरोधी संघर्षो में एकजुट करने के लिये कम्युनिस्ट पार्टी ने काम किया। वे ट्रेड-यूनियनों और किसान सभा में वर्गीय एकजुटता को केन्द्र में रखते हुए जातिगत भेदभाव एवं असमानता के विरूद्ध चेतना पैदा करने तथा वैसा आचरण करने के लिए कार्य कर रहे थे। वे इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि जातिगत भेदभाव के विरूद्ध संघर्ष को यदि सर्वोपरि रखकर संघर्ष किया जाता है तो जमींदार विरोधी संघर्ष न तो आगे बढ़ाया जा सकता है और न ही मजदूरों की व्यापक एकता कायम की जा सकती है। वे जमींदारों की इस साजिश को भी अच्छी तरह समझते थे कि वे जातियों के बीच के भेदभाव व असमानता का इस्तेमाल किसान आंदोलन में फूट डालने के लिए करते हैं। यदि कम्युनिस्ट भी जाति विरोधी संघर्ष को केन्द्र में ले आते तो जमींदारों को ही इससे राहत मिलती और किसान आंदोलन में फूट डालने में वे सफल हो जाते ।

इसलिए 1930 में 'कार्यवाही के लिए मंच' में कम्युनिस्ट पार्टी घोषित करती है:

''ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन का ही यह नतीजा है कि आज हमारे देश में लाखों की तादाद में गुलाम हैं। आज भी समाज से बहिष्कृत करोड़ों मेहनतकश हैं जिन्हें कोई अधिकार नहीं है। ब्रिटिश शासन में जमींदारी प्रथा, प्रतिक्रियावादी जाति प्रथा, धार्मिक पाखण्ड और गुलामी तथा भूदासता की सारी पुरानी परम्परायें हमारे देश की जनता का गला घोंट रही हैं तथा जनता की मुक्ति के रास्ते में बाधक हैं। इन्हीं का नतीजा है कि आज बीसवीं शताब्दी में भी हमारे देश में अछूत हैं जिन्हें अन्य मनुष्यों से मिलने-जुलने, सार्वजनिक कुओं से पानी पीने, सार्वजनिक स्कूलों में पड़ने आदि का कोई अधिकार नहीं है।

''भारतीयों के नाम पर लगे इस शर्मनाक धब्बे को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करने के बजाय गांधी और दूसरे कांग्रेसी नेता जातिप्रथा को बनाये रखने का आह्वान कर रहे हैं। यह जाति प्रथा ही है जिसके चलते अछूतों की यह अवस्था है। यही अछूतों के सामाजिक रूप से बहिष्कृत होने का औचित्य सिद्ध करती है। जाति प्रथा के इस सुधरे हुए रूप का निर्मम ध्वंस कृषि क्रांति और ताकत के बल पर ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने का रास्ता ही एकमात्र रास्ता है जिस पर चलकर मेहनतकश अछूतों और गुलामों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और न्यायिक मुक्ति हो सकती है। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी सभी अछूतों का आह्वान करती है कि वे देश भर के मजदूरों के साथ मिलकर ब्रिटिश शासन और जमींदारी विरोधी संयुक्त क्रांतिकारी मोर्चे का हिस्सा बनें।

''भारत की कम्युनिस्ट पार्टी सभी अछूतों का आह्वान करती है कि वे देश की मेहनतकश जनता के एक हिस्से के खिलाफ दूसरे हिस्से को खड़ा करने की ब्रिटिश साम्राज्यवादियों और उनके प्रतिकियावादी एजेन्टों की चालों से बचें।

''भारत की कम्युनिस्ट पार्टी गुलामी, जातिप्रथा और हर किस्म की जातिगत असमानता के पूरी तरह से खात्मे के लिए संघर्ष करती है। भले ही वह असमानता सांस्कृतिक,

लाल परचम-8

सामाजिक या किसी भी रूप में क्यों न हो । भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का संघर्ष, मेहनतकश अछूतों और हमारे देश की मेहनतकश जनता के हर हिस्से की पूरी-पूरी बराबरी के लिए है।''

(Joint Platform of Action of the C.P.I., Documents of the Communist Movement in Indias, Vol -III, Page 87, National Book Agency Pvt. Ltd., Calcutta, 1997-edition)

यदि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी आजादी के संघर्ष में समूचे देश की मेहनतकश आवाम को नेतृत्व नहीं दे सकी और उसके हिस्से के बतौर जाति व्यवस्था के उन्मूलन के कार्यक्रम को अंजाम नहीं दे सकी तो इसका कारण जाति प्रश्न पर कम्युनिस्ट पार्टी का गलत दृष्टिकोण का होना नहीं है। बल्कि इसके कहीं और कारण हैं। जाति के प्रश्न पर कम्युनिस्ट पार्टी का उपर्युक्त दृष्टिकोण सही है। इसको लागू करने से ही भारतीय उपनिवेशवाद-विरोधी सामंतवाद-विरोधी क्रांति के हिस्से के तौर पर जातिगत भेदभाव और जातीय उत्पीड़न को समाप्त किया जा सकता था । यदि ऐसा नहीं हो सका तो इसके कारण भारतीय परिस्थितियों के मूल्यांकन से जुड़ी हुई रणनीति व कार्यनीति में तलाशे जाने चाहिए। बहरहाल यह प्रस्तुत लेख का विषय नहीं है।

कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में नेतृत्व न स्थापित कर पाने के कारण तलाशते समय हमारे देश के कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन जाति के सवाल पर कम्युनिस्ट पार्टी की गलत पहुंच को इसका कारण मानते हैं। इधर पिछले एक दशक से कुछ कम्युनिस्ट संगठन वर्ग और जाति के अंतर्सम्बधों की नये सिरे से खोज कर रहे हैं विशेषतौर पर जब से दलितों के कुछ संगठन प्रभावशाली स्थिति में आये हैं तब से इनकी निगाह में जाति का सवाल नये सिरे से आ उपस्थिति हुआ है। वैसे यह सवाल 1970 के दशक में भी कम से कम महाराष्ट्र में तो उभरा था। आज यह सवाल जब उभर रहा है तो इसकी छानबीन करने की आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए, सी.पी.आइ. (एम.एल.) (पी. डब्लयू.) का परिप्रेक्ष्य पत्र ''भारत में जाति का सवाल '' में अम्बेडकर का राजनीतिक मूल्यांकन करते हुए कहा गया है:

''हालांकि वे दलित निम्न पूंजीपति वर्ग के बुनियादी तौर पर प्रतिनिधि थे, फिर भी उनके जीवन को दो चरणों में बांटा जा सकता है। 1941 में अंत होने वाले पहले चरण के दौरान उन्होंने निश्चित तौर पर समग्र रूप में जनपक्षधर भूमिका निभायी थी और जन-गोलबंदी व जन-संघर्षो में शरीक थे। ये पहले सामाजिक और नागरिक अधिकारों के लिये थे और बाद में किसानों और मजदूरों के जनवादी अधिकारों के मुद्दों पर थे। उन्होंने अनेक जाति-विरोधी संघर्षो की अगुवायी की जो सामंतवाद-विराधी संघर्षो के महत्वपूर्ण हिस्से हैं हालांकि मुख्यतया अधिरचना से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार वे और उनके नेतृत्व में चले आंदोलन उस काल के जनवादी शक्तियों के महत्वपूर्ण हिस्सा बनते हैं।

''फिर भी 1941 उपरांत चरण में वे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों और दलाल पूंजीपति-सामंती वगों की सेवा में चले गये। वाइसराय और नेहरू के मंत्रिमंडलों में शामिल होकर और संविधान निर्मात्री सभा की अध्यक्षता करके उन्होंने उस काल की सबसे प्रतिक्रियावादी, दमनकारी और जनवाद विरोधी शक्तियों के खेमे की सेवा करना

सार्थक संवाद-8

चुना । यद्यपि बाद में इन्हीं शासक वर्गों द्वारा उन्हें सत्त से हटा दिया गया तथापि वे उनके विरूद्ध संघर्ष के रास्ते में नहीं लौटे। अपने को और अपने नेतृत्व में जनसमुदाय को सुधारवादी गतिविधियों तक सीमित रखते हुए वे वस्तुगत तौर पर जनवाद विरोधी शक्तियों का सेवा करते रहे।

''इसलिए हमें पहले काल के अम्बेडकर के संघर्ष के पहलू और जनपक्षघर जनवादी भूमिका को चिह्नित करना और समर्थन करना चाहिए। इसके साथ ही हमें दूसरे काल के उनके शासकवर्गीय, जनवाद विरोधी भूमिका का पर्दाफाश करना चाहिये और पूर्णतया रद्द करना चाहिये।''

(CPI (ML- PW), Prespective Paper page-23-24)

यहां सी.पी. आइ. (एम.एल.-पी.डव्ल्यू.) अम्बेडकर को एक काल में जनपक्षघर जनवादी शक्ति के तौर पर और दूसरे काल में शासक वर्ग के पक्षधर और जनवाद विरोधी के तौर पर चित्रित करके, उनके समग्र मूल्यांकन के सवाल को छोड़ देती है। जबकि अम्बेडकर महासत्याग्रह के समय से ही ब्रिटिश उपनिवेशवाद से किसी न किसी किस्म से तालमेल बैठाकर चल रहे थे। सी.पी. आइ. (एम.एल-पी डव्ल्यू.) के अनुसार वे बुनियादी तौर पर दलित निम्न-पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि थे। दलित निम्न-पूंजीपति वर्ग के वे उस हिस्से के राजनीतिक प्रतिनिधि थे, जो जनवादी क्रांति में मजबूत सहयोगी होता है या उस हिस्से के प्रतिनिधि थे जो व्यवस्था में आत्मसात होने के लिये तैयार है, वे इस सवाल पर चुप साधे रहते हैं। उनकी चुप्पी तब समझ में आती है जब वे जातिप्रथा के उन्मूलन के लिए इसी परिप्रेक्ष्य पत्र में यह लक्ष्य अपने संगठन के लिए रखते है:

''जाति-विरोधी' संगठनों की आज आवश्यकता है जो नव जनवादी क्रांति के हिस्से के बतौर जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए लड़े।

''इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए सभी दबी-कुचली (downtrodden) जातियों (अनु.जा./जन. जा./पिछड़ी जाति) को एकताबद्ध करना चाहिये। इसी के साथ ही उच्च जातियों के उस हिस्से से दोस्ती विकसित करनी चाहिए जो जातिगत भेदभाव अमल में नहीं लाते।''

(वही, पृष्ठ-48)

इस परिप्रेक्ष्य पत्र के इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जाति-विरोधी संगठन खड़ा करने के लिए अनु.जा./अनु ज.जा./पिछड़ी जाति में पैदा होना जरूरी है। क्योंकि जाति विरोधी सिर्फ ये ही जातियां हैं। इन जातियों में भी इनके अनुसार कोई सीढ़ीनुमा क्रम नहीं हैं । यहां इस उद्धरण से यह भी स्पष्ट है कि उच्च जाति के ऐसे हिस्से से यह संगठन सिर्फ दोस्ती करेगा। ऐसे जाति-विरोधी संगठन में सिद्धान्तत: किसी भी वर्ग का सदस्य (सिवाय नव-जनवादी क्रांति के दुश्मन वर्ग के) शामिल हो सकता है।

शायद इसीलिए सी.पी.आइ. (एल.एल.-पी. डब्ल्यू) अम्बेडकर के समग्र राजनीतिक मूल्यांकन को दो हिस्सों में बांट रही है। उनके 'जनपक्षघर और 'जनवादी' पक्ष को उजागर करने के लिए सी. पी.आइ. (एम.एल.-पी डव्ल्यू) के पास इससे आधार मिल जायेगा।

दलित मुक्ति

यहां यह भी ध्यान में रखने की बात है कि अम्बेडकर के जमाने में जाति व्यवस्था की जड़ें ज्यादा गहरी थीं और इन जातियों– अनु.जा./ज.जा/पिछड़ावर्ग में आने वाली आबादी में अधिकांश ग्रामीण– शहरी मजदूर और छोटे किसान आते थे। उस समय के सामंतवाद विरोधी संघर्ष में शामिल होने वाली अधिकांश आबादी इन्हीं जातियों से आती थी। जाति आधारित संगठन बनाना उस समय भी गलत था। आज जब ग्रामीण इलाकों में वर्गीय विभेदीकरण को प्रक्रिया इन सभी जातियों सहित समूचे समाज में काफी तीव्र हुई है, उस समय जाति आधारित संगठन खड़ा करना और भी खतरनाक बात होगी।

इस संगठन की 'जाति-विरोधी' जाति-संगठन की अवस्थिति से भिन्न रूप में सी.पी.आइ. (एम. एल.-जनशक्ति) जातिवाद के उन्मूलन के लिए संगठन बनाने का आह्वान करती है। 'जाति के सवाल पर' सी.पी.आइ. (एम.एल -जनशक्ति) का परिप्रेक्ष्य कहता है:

> ''यह पहले ही जिक्र किया जा चुका है कि संगठन के लिए मुख्य नारा ''दलितों को एकबद्ध करो और दलितों के साथ एकबद्ध हो'' होना चाहिए।
>
> ''कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच कुछ संगठन हैं जो यह तो स्वीकार करते हैं कि जातिवाद के उन्मूलन के लिए ठोस कार्यक्रम होना चाहिये लेकिन वे दलित के बतौर दलितों के संगठन का विरोध करते हैं। वे ऐसे संगठनों की बुनियादी धारणा (प्कमं) को नहीं समझते हैं। मजदूर मजदूरों के जन संगठनों यानी कि ट्रेड-यूनियनों में संगठित होते है। इन ट्रेड-यूनियनों के जरिये वे अपनी रक्षा करते हैं और वर्गविहीन समाज के लिए लड़ने की आवश्यकता के पहले पाठ सीखते हैं। किसान किसान-सभाओं में सामंती उत्पीड़न व शोषण के विरूद्ध लड़ने के लिए संगठित होते है। उस अनुभव के जरिये वे कृषि क्रांति और नव-जनवादी क्रांति की आवश्यकता समझते हैं। वे मजदूर-किसान संश्रय की आवश्यकता भी सीखते हैं। दलित विशेष उत्पीड़न का सामना कर रहे हैं, इसलिए उन्हें भी इन उत्पीड़नों, दमनों और भेदभावों के विरूद्ध लड़ने के लिए संगठित होना चाहिए और अनुभव के जरिए वे भी कृषि क्रांति और नव जनवादी क्रांति की आवश्यकता को समझेंगे।
>
> ''ये दलित संगठन जातिवाद के विरूद्ध लड़ने के लिए और इन्हें जातिवाद के उन्मूलन के लिए दलितों और जनवादी लोगों को गोलबंद करना चाहिये।''
>
> ''जाति ग्रुपों के आधार पर संगठन हतोत्साहित करना चाहिये। क्योंकि ऐसे संगठन सभी उत्पीड़ित जातियों की एकता को मुश्किल बना देते हैं। कभी-कभी ऐसे संगठन जाति ग्रुपों के अनुसार दलितों को बांटने के लिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था के कारनामे पाये जाते हैं।''
>
> (सी.पी.आइ. (एम.एल.-जनशक्ति) 'जाति के सवाल पर परिप्रेक्ष्य पत्र')

इस प्रकार, सी.पी आइ. (एम.एल.-जनशक्ति), 'जातिवाद से लड़ने और उसके उन्मूलन के लिए एक दलित संगठन बनाना चाहती है और इस संगठन की सदस्यता के दरवाजे गैर-दलित जनवादी लोगों के लिए खुले रहेंगे या नहीं, यह तो स्पष्ट तौर पर नहीं कहा गया है बल्कि उनको गोलबंद करने के लिए कहा गया है। चूंकि दलितों को भी गोलबंद करने के लिये कहा गया है इसलिए यह माना जा सकता है कि दलित के साथ-साथ गैर दलित जनवादी व्यक्तियों के लिए भी

इनके दरवाजे इस दलित संगठन में खुले रहेंगे। जिस आधार पर ये दलितों को एक श्रेणी के रूप में संगठित करना चाहते हैं उसी आधार पर दलितों की अलग-अलग जातियों को संगठित होने में क्या दिक्कत है? अगर ब्राह्मणवादी व्यवस्था अलग -अलग दलित जातियों को बांटने के लिए किसी खास दलित जाति का संगठन खड़ा कर सकती है तो दलित और गैर दलित जातियों के बीच बंटवारा करने का आधार तो खालिस दलित संगठन खड़ा करके सी.पी.आइ. (एम.एल.-जनशक्ति) ने अपने परिप्रेक्ष्य में कर दिया है।

इस परिप्रेक्ष्य में तर्क करने की जो शैली अपनाई गयी है वह किसी भी मार्क्सवादी को चक्कर में डाल देने वाली है। मजदूर अपने को एक वर्ग-संगठन में शामिल होते हैं। इनमें दलित भी होंगे और गैर दलित भी । इसी तरह के तमाम वर्गीय और तबकाई संगठन कम्युनिस्ट खड़े करते हैं या उनमें काम करते हैं। लेकिन दलित के बतौर दलित संगठन का कार्यभार विशिष्ट उत्पीड़नों के विरूद्ध लड़ाई और जातिवाद का खात्मा है । इसके दलित संगठन में कोई भी दलित शामिल हो सकता है। यह भी उस समय जब इस संगठन का परिप्रेक्ष्य कहता है कि जाति का उत्पादन सम्बन्धों के क्षेत्र का दायरा सीमित हुआ है। इन्होंने अपने इसी परिप्रेक्ष्य में एक जगह कहा है:

> ''पहले उत्पीड़ित जातियों और उत्पीड़ित वर्गो के बीच नाममात्र का अंतर था । इसी के साथ ही उत्पीड़ित जाति व उत्पीड़क वर्ग एक ही थे। लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान और उसके बाद जातियों के भीतर ही वर्ग विकसित हो गये। इससे भी ज्यादा इस जाति व्यवस्था से सबसे अधिक निचोड़ने वाले साम्राज्यवादियों ने उत्पीड़ित जातियों को शोषित करने में इस व्यवस्था का इस्तेमाल किया, लेकिन वे खुद इस जाति व्यवस्था के बाहर बने रहे। और भी, उत्पीड़क जातियों का एक बड़ा हिस्सा अब उत्पीड़ित वर्ग बन चुका है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें यदि जाति व्यवस्था के विरूद्ध संघर्षो से वर्ग संघर्ष को जोड़ा नहीं गया तो इसकी शक्ति में क्षरण होगा, और इसी के साथ ही जातिवाद विरोधी संघर्ष अपने निशाने में चूक जायेगा। जब यह वर्ग संघर्ष के साथ नहीं जोड़ा जायेगा।।''
>
> (वही पृष्ठ-21)

यहां पर इन्होंने उत्पीड़क जातियों के एक बड़े हिस्से के उत्पीड़ित वर्गो में शामिल होने की बात तो की है लेकिन एक समय की उत्पीड़ित जातियों से शोषक वर्ग में जाने की बात को गोल कर दिया है। हालांकि अन्य एक स्थान पर मध्यम जातियों के उत्पीड़क के रूप में तब्दील होने की चर्चा की है लेकिन दलित जातियों में भी वर्ग विभेदीकरण हुआ है और इसका एक छोटा सा हिस्सा शासक वर्ग में शामिल हुआ है, इसकी कहीं भी चर्चा नहीं है। दलितों के बीच सिर्फ निम्न-पूंजीपति वर्ग के पैदा व विकसित होने की चर्चा है। इनके द्वारा निर्मित जातिवाद के उन्मूलन के लिए बनने वाले संगठन में वर्ग दृष्टिकोण सिरे से नदारद है। सी.पी.आइ. (एम.एल.-जनशक्ति) के परिप्रेक्ष्य बरक्स सी.पी.आइ. (एम.एल.-पी. डब्ल्यू) जहां जातिवाद विरोधी संगठन का निर्माण दलित /आदिवासी/पिछड़ी जातियों को लेकर करना चाहती है वहीं जनशक्ति सिर्फ दलित जातियों को लेकर करना चाहती है। जनशक्ति ने दलित जातियों में एक शब्द 'समूह' और जोड़ दिया है जिससे वह आदिवासी, ईसाई, सिख और बौद्ध दलितों को समेट सके लेकिन कुल मिलाकर यह एक जातिवादी संगठन ही बन कर रह जायेगा।

लाल सलाम-8

सी.पी.आइ. (एम.एल.-जनशक्ति) जब अम्बेडकर का मूल्यांकन करने में कोताही बरतती है तो जाति के सवाल पर उसका यह अवसरवाद और ज्यादा स्पष्ट रूप से उजागर हो जाता है। पी. डब्ल्यू. का परिप्रेक्ष्य तो विचारधारात्मक तौर पर अम्बेडकर को सुधारवादी उदार बुर्जुआ के प्रतिनिधि के तौर पर चिह्नित करता है। वह राजनीतिक तौर पर उसके प्रथम काल के दौरान जनपक्षधर व जनवादी तथा दूसरे चरण में उन्हें जनविरोधी दुश्मन की सेवा में लगा, समूचे दलित निम्न पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि बताती है। सी.पी.आइ. (एम.एल.-पी. डब्ल्यू.) पूंजीपति वर्ग का विश्लेषण करते समय दलाल-नौकरशाह पूंजीपति और राष्ट्रीय पूंजीपति शब्दावली का इस्तेमाल करता है लेकिन अम्बेडकर को वह सुधारवादी उदार बुर्जुआ का वैचारिक प्रतिनिधि बताता है। पूंजीपति के इस नये प्रवर्ग का उनके मूल दस्तावेजों में जिक्र नहीं है । जो वर्ग उनकी दृष्टि में अस्तित्वहीन है उसका वैचारिक प्रतिनिधि कहां से आ जायेगा? इनकी सोच की विसंगति उस समय उजागर हो जाती है जब वे अम्बेडकर को उदार दलित निम्न पूंजीपति वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधि बताते है।(पी. डब्ल्यू. की राय में अम्बेडकर वैचारिक प्रतिनिधि तो सुधारवादी उदार बुर्जुआ के थे और राजनीतिक तौर पर दलित निम्न पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि थे। यह सोचने का चौखटा उन्हें ऐसी ही विसंगतियों की ओर ले जाता है जो कभी अम्बेडकर को प्रगतिशाील सिद्ध करती है तो कभी प्रतिक्रियावादी। जनशक्ति का परिप्रेक्ष्य तो अम्बेडकर का मूल्यांकन करने से ही किनाराकशी कर लेता है। वह 1928 में मजदूरों की हड़ताल में अम्बेडकर द्वारा दलित मजदूरों को न शामिल होने का आह्वान करने और कम्युनिस्ट यूनियन नेताओं द्वारा फैक्टरी के अंदर सभी विभागों में दलित मजदूरों की नियुक्ति के लिए ना लड़ने, दोनों की एक सुर में आलोचना करता है। इसी प्रकर अम्बेडकर के बारे में ब्रिटिश समर्थक होने की चर्चा तो परिप्रेक्ष्य करता है लेकिन इसे गलत अवधारणा के तौर पर भी पेश करता है। समूचे परिप्रेक्ष्य में अम्बेडकर के मूल्यांकन में उन्हें ऐसे पेश किया गया है जिससे यह लगता है कि जाति विरोधी आंदोलन में उनका मुख्यत: सकारात्मक योगदान है। लेकिन इसे वह साफ-साफ नहीं कहता, किन्तु-परन्तु से बचते-बचाते यह परिप्रेक्ष्य यह कहता है कि इसमें अम्बेडकर का समग्र मूल्यांकन नहीं किया जा रहा है।

इन दोनों परिप्रेक्ष्यों में जाति प्रश्न को सर्वहारा वर्ग की दृष्टि से देखने के बजाय निम्न पूंजीवादी दृष्टि से देखा गया है। यह दृष्टि दलित जाति के विरोधी वर्गों को एक साथ खड़ा करने की है। इस अर्थ में यह वर्ग संघर्ष को धूमिल करती है। जातिवाद के उन्मूलन में कारगर होने के बजाय उनकी जातिगत संगठन बनाने की कार्यदिशा और ज्यादा जातिवादी तत्वों को मजबूत करेगी। भले ही ये उत्पीड़ित हिस्से के जातिवादी तत्व हों। यह बात दीगर है कि इनकी और बड़ी गलती मौजूदा सामाजिक-आर्थिक संरचना और उससे पैदा होने वाले बुनियादी अंतरविरोधों को न समझने में है । लेकिन यह प्रश्न मौजूदा लेख के दायरे से बाहर है। फिर भी यदि सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष भी प्रधान हो तो सामंतवाद का विरोध और सामंती उत्पीड़न का खात्मा उत्पीड़ित जातियों के संगठन बना कर नहीं किया जा सकता । क्योंकि जाति व्यवस्था के अंदर हर जाति सीढ़ीनुमा क्रम में है। जिन जातियों का संगठन होगा भी वे भी एक दूसरे के साथ इसी क्रम में खड़ी होंगी।

इस सवाल को ज्यादा सिद्धान्त का जामा पहनकर कुछ वामपंथी बुद्धिजीवियों द्वारा पेश किया गया है उदाहरण के लिए 'संधान ' नामक पत्रिका में प्रकाशित एक सेमिनार में पढ़े गये पर्चे के अनुसार :

''सामाजिक आंदोलन सामाजिक परिघटना के अभिन्न अंग हैं। जटिल, उलझे हुए तन्तुओं के रास्ते ये समाज के संरचनात्मक स्तर से जुड़े हैं और उसी से उद्‌भूत हैं। इसके बारे में ऐसा सोचना कि ये वर्ग संघर्ष से इतर या असम्बद्ध हैं, सर्वथा गलत है। एक विकसित उत्पादन प्रणाली में और जटिल सामाजिक बनावट में संरचनात्मक स्तर का वर्ग-संघर्ष प्रत्यक्ष और अलग से नहीं प्रकट होता । वह प्रायः सामाजिक संघर्षों और आंदोलनों के उलझे हुए और विविध रूपों में ही सामने आयेगा। अतः सामाजिक आंदोलन को जैसे कि दलित आंदोलन या नारी आंदोलन को, वर्ग से इतर या भिन्न मानना गलती है। **जटिल सामाजिक व्यवस्थाओं में वर्ग संघर्ष अनेक प्रकार के सामाजिक संघर्षों के रूप में ही प्रकट होगा।** न तो इन्हें एक दूसरे से असम्बद्ध और विलग समझा जा सकता है, न एक को दूसरे का पर्याय बताया जा सकता है। ये अलग-अलग स्तरों की हकीकतें हैं जिनके बीच परस्पर प्रभावी द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध हैं।वर्ग और जाति के बीच के अंतर्सम्बन्धों को समझने और उद्‌घाटित करने के लिए ऐसी वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति को इस्तेमाल में लाना होगा।

(जोर हमारा, संधान अंक-1, पृष्ठ-39)

इसके ठीक ऊपर वाले पैरा में इसी पर्चे में कहा गया है:

''अमूर्त संरचना मूर्त परिघटनाओं को निर्धारित अवश्य करती है लेकिन वह परिघटनात्मक स्तर से प्रभावित भी होती है। लम्बे दौर में संरचना पर बदलाव आता रहता है और परिघटना के धरातल पर व्यापक और रणनीतिक हस्तक्षेप के जरिये संरचना में निर्णायक बदलाव भी लाया जा सकता है। दरअसल हस्तक्षेप के लिए केवल परिघटना का धरातल ही उपलब्ध है। सीधे संरचना तक किसी कि पहुंच नहीं है। क्रांति के विज्ञान से तात्पर्य केवल यही होता है कि संरचनात्मक और परिघटनात्मक स्तरों के जटिल और द्वन्द्वात्मक अन्तर्सम्बन्धों की समझदारी के आधार पर परिघटना के धरातल पर ऐसा रणनीतिक हस्तक्षेप डिजाइन किया जा सकता है जिसके जरिये संरचना के स्तर पर बदलाव लाया जा सके।

(वही, पृष्ठ 39ए जोर मूल में)

इस लेख में एक जगह कहा गया है कि वर्ग की अवधारणा उत्पादन प्रणाली के संरचनात्मक स्तर से सम्बद्ध हैं और दूसरी जगह यह कहा गया है कि अनुभव को जो स्तर सहज प्राप्त है, वह परिघटना का स्तर है। अब यदि परिघटना संरचना की दार्शनिक उड़ानों वाली बहस को किनारे करके बात ठोस तरीके से की जाय और देखा जाय कि 'संधान' का यह लेख क्या कहना चाहता है? वर्ग की अवधारणा उत्पादन प्रणाली से यदि संरचनात्मक स्तर पर सम्बद्ध है तो वर्ग और वर्ग संघर्ष अनुभव को सहज प्राप्त नहीं होंगे। फिर अनुभव को जो सहज प्राप्त है वह परिघटना का स्तर है और परिघटनाओं को स्तर सामाजिक आंदोलन का है। यानि कि दलित आंदोलन और नारी आंदोलन जैसे आंदोलन ही अनुभव को सहज प्राप्त है और वर्ग संघर्ष अनेक प्रकार के सामाजिक संघर्षों के रूप में ही प्रकट होगा। यानि पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना में वर्ग संघर्ष परिघटनायें ही हैं तो रोज-ब-रोज लोग वर्गों के आधार पर क्यों संगठित होते हैं और पूंजीपति के विरूद्ध वे क्यों संघर्ष करते हैं? क्या यह संघर्ष उन्हें पूंजीवादी संरचना को समझने में मदद नहीं करता। हकीकत यह

दायरा-8

है कि वर्ग संघर्ष को तेज करके पूंजीवादी संरचना तक सीधे पहुंचा जा सकता है। परिघटना के स्तर पर वर्ग संघर्ष के अनुभव का स्तर सीधे कार्यवाही कि लिए मिला हुआ है ।

यदि दलित समस्या व इस अर्थ में जाति प्रश्न को हल करना है तो 'संधान' के मुताबिक दलित पहचान के लिए संघर्ष करके ही इस समस्या का समाधान तो निकल ही सकता है और इसके जरिये पूंजीवादी सामाजिक संरचना को तोड़ने तक जाया जा सकता है। लेकिन दलित पहचान के लिए संघर्षरत्संगठन अधिकतर नहीं तो काफी बड़ी संख्या में पूंजीवादी राज्य द्वारा आत्मसात कर लिये जाते हैं। उस परिघटना को इस पर्चे के लेखक कैसे देखते हैं? यदि अम्बेडकर पूंजीवादी राज्य द्वारा आत्मसात कर लिये गये तो क्या इसके लिए कम्युनिस्ट पार्टी की गलत नीतियां जिम्मेदार हैं? कि कम्युनिस्ट पार्टी की वर्ग और जाति के बारे में यांत्रिक मार्क्सवादी समझ के कारण सामाजिक सुधार के आंदोलन और कम्युनिस्ट आंदोलन के बीच एकता नहीं स्थापित हो सकी । एकता न स्थापित होना एक बात है लेकिन शासक वर्ग की सेवा करना एकदम भिन्न बात है। अम्बेडकर यदि सचमुच में जातिवाद का खात्मा करने के लिए संघर्षरत्होते तो वे बुद्ध धर्म में शरण नहीं लेते । क्या अम्बेडकर के बुद्ध धर्म में जाने के लिए भी कम्युनिस्ट पार्टी की यांत्रिक समझ जिम्मेदार है? 'संधान' के लेखकगण बतायेंगे?

इस समूचे पर्चे में कम्युनिस्टों की यांत्रिक समझ को इतना कोसा गया है कि लगता है कि अम्बेडकर, पेरियार और अन्य जातिवाद विरोधी नेताओं के पतन के लिए कम्युनिस्ट जिम्मेदार हैं। कम्युनिस्ट पार्टी यदि राष्ट्राीय स्वतंत्रता संग्राम में नेतृत्व देने में असफल रही तो उसके मुख्य कारण उसकी समग्र विचारधारात्मक राजनैतिक और रणनीतिक कार्य- दिशा में रही हैं। जिस प्रश्न पर उस समय कम्युनिस्ट पार्टी सही थी, उसी प्रश्न पर 'संधान' के लेखकगण यांत्रिक समझदारी की तोहमत लगा रहे हैं।

या तो वे अम्बेडकर व पेरियार जैसे नेताओं को काठ का उल्लू समझते हैं कि यदि कम्युनिस्ट उनके मुताबिक चले होते तो अम्बेडकर शासक वर्ग की राजनीतिक में सामाजिक होने के बजाय राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में अग्रणी भूमिका अदा करते। 'संधान' के लेखकगण! अम्बेडकर व पेरियार अच्छी तरहे जानते थे उन्हें क्या करना है और किसके विरूद्ध आवाज उठानी है। कम्युनिस्ट भी अच्छी तरह जानते थे कि अम्बेडकर और पेरियार अपनी तमाम जातिवाद-विरोधी, ब्राह्मणवाद-विरोधी घोषणाओं के बावजूद सत्त-प्रतिष्ठानों में घुसने के लिए और शासक वर्ग की सेवा करने के लिए तत्पर हैं।

ठीक इसी प्रकार आज दलित अस्मिता के नाम पर दलितों के वोट का सौदा करने वाली कांशीराम-मायावती की बसपा भी अच्छी तरह जानती है कि उसे इसी व्यवस्था की सेवा करनी है। इस पूंजीवादी व्यवस्था की हिफाजत में उसे दलित पहचान के लिए लड़ना है। भारतीय शासक वर्ग अपनी सत्त का सामाजिक आधार बढ़ाने की कोशिश करता रहा है। इसके लिए वह दलितों व आदिवासियों के बीच से ऐसे वर्ग तैयार करता रहा है जो इस व्यवस्था के आधार को विस्तृत करें। आरक्षण व अन्य सकारात्मक भेदभाव वाले कदम शासक वर्ग की इसी कोशिश का परिणाम हैं। जनतंत्रीकरण इसका उपोत्पाद है। यह शासक वर्ग की चाहत नहीं है।

कुल मिलाकर पहचान के आधार पर दलित संगठन बनाने और समाज सुधार आंदोलन व कम्युनिस्ट आंदोलन के बीच रणनीतिक संयुक्त मोर्चा कायम करने का जो अभियान इस पत्रिका के

दलित मुक्ति-8